ओ३म्

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 06 जुलाई 2025

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र

सप्ताह रविवार, 06 जुलाई 2025 से 12 जुलाई 2025

आषाढ़ शु. 11 ● वि० सं०-2081 ● वर्ष 66, अंक 27, प्रत्येक मंगलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 201 ● सृष्टि-संवत् 1,97,29,49,125 ● पृ.सं. 1-12 ● मूल्य - 5/- रू. ● वार्षिक शु. 300/- रू.

दयानन्द महाविद्यालय, हिसार में हुआ हीरक जयंती समारोह का भव्य आयोजन

दयानंद महाविद्यालय हिसार का 'हीरक जयंती समारोह' का शुभारंभ हवन यज्ञ से हुआ। महाविद्यालय की 1950 से लेकर 2025 तक की गाथा दर्शाने के लिए भव्य प्रदर्शनी का उद्घाटन मुख्य अतिथि आर्य रत्न डॉ. पूनम सूरी के हाथों हुआ। ज्योति प्रज्वलित करने के बाद मुख्य अतिथि ने हेरिटेज मैगजीन का विमोचन किया। महाविद्यालय की उपलब्धियों का विवरण प्रिंसिपल डॉ. विक्रमजीत ने प्रस्तुत किया।

कॉलेज की ओर से श्री पूनम सूरी जी का भव्य अभिनंदन किया गया। इस अवसर पर बोलते हुए डॉ. सूरी ने कहा कि यह महाविद्यालय उत्तर भारत की प्रसिद्ध संस्था है। इस कॉलेज ने देश को सबसे ज्यादा डॉक्टर इंजीनियर वैज्ञानिक और प्रशासक प्रदान किए हैं। *नेक* के उच्चतम ग्रेड सहित इस विद्यालय के नाम अनेक कीर्तिमान स्थापित हुए हैं। इस महान संस्था की उन्नति में जिन महानुभावों ने उल्लेखनीय भूमिका निभाई है श्री सूरी जी ने उनका विशेष वर्णन करते हुए आभार व्यक्त किया। उन्होंने कहा कि योग स्वास्थ्य की कुंजी है और यह विश्व को भारत की देन है।

भव्य समारोह में भाग लेने के लिए विशेष रूप से डीएवी के उपाध्यक्ष जस्टिस प्रीतम पाल, अनिल राव, प्रबोध महाजन के अतिरिक्त सचिव श्री रमेश लिखा, श्री सत्यपाल आर्य डायरेक्टर कॉलेज शिवरमन गौड़ तथा पूर्व प्रिंसिपल इंद्रजीत नाहल तथा पूर्व प्रिंसिपल सुभाष शर्मा आदि भी पहुंचे।

मुख्य अतिथि द्वारा महाविद्यालय की उन्नति में योगदान देने वाले विशिष्ट अध्यापकों, सदस्यों और शैक्षणिक, एनसीसी, एनएसएस, सांस्कृतिक खेलकूद के विभिन्न क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रदर्शन करने वाले मेधावी छात्रों को भी सम्मानित किया गया।

समारोह का विशेष आकर्षण महाविद्यालय और डीएवी स्कूल के विद्यार्थियों द्वारा स्वामी दयानन्द सरस्वती के जीवन पर आधारित 'लघु नाटिका' रही। अंत में स्टाफ सेक्रेटरी डॉ. मोनिका कक्कड़ द्वारा सभी का धन्यवाद ज्ञापित किया गया।

डी.ए.वी. कटक में मनाया गया 11वाँ अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस

11वें अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस पर डीएवी पब्लिक स्कूल सैक्टर–6 सी.डी.ए. कटक के परिसर में विशाल योग प्रदर्शन का आयोजन हुआ। 21 जून 2025 को प्रातःकाल आयोजित इस प्रदर्शन में पतंजलि योग समिति के जिला सहप्रभारी श्री किशोर सागर तथा योग प्रशिक्षण श्री कमल रजन विस्वास इस अवसर पर विशेष अतिथि के रूप में उपस्थित हुए।

विद्यालय की प्राचार्या ने विशिष्ट अतिथियों का स्वागत किया और छात्रों को संबोधित करते हुए 'अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस 2025' के ध्येय वाक्य "योग आत्मा और समाज के लिए" पर अपने विचार रखे।

श्री किशोर सागर ने योगाभ्यासयों को संबोधित करते हुए रोग मुक्त जीवन के योग की आवश्यकता पर बल दिया। उनके मार्ग दर्शन में छात्रों ने स्वस्थ जीवन के लिए आवश्यकता प्राणायाम और भिन्न–भिन्न आसनों का अभ्यास किया।

इसके साथ–साथ बच्चों ने इस अवसर पर निबन्ध तथा प्रश्नोतरी प्रतियोगिता में भाग लिया।

जो सब जगत् के पदार्थों को संयुक्त करता और सब विद्वानों का पूज्य है और ब्रह्मा से लेके सब ऋषि मुनियों का पूज्य था, है और होगा, इससे उस परमात्मा का नाम **'यज्ञ'** है। क्योंकि वह सर्वत्र व्यापक है। स. प्र. समु. १

{संपादक - पूनम सूरी}

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह रविवार, 06 जुलाई 2025 से 12 जुलाई 2025

समित्पाणि शिष्य के उद्गार

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

एतास्ते अग्ने समिधः, त्वमिद्धः समिद् भव।
आयुरस्मासु धेहि, अमृतत्वमाचार्याय।।

ऋषिः **ब्रह्मा**। देवता **अग्निः** छन्दः **अनुष्टुप्।**

● (**अग्ने**) हे यज्ञाग्नि! (**एताः**) ये (**ते**) तेरे लिए (**समिधः**) समिधाएँ [हैं], [इनसे] (**त्वं**) तू (**इत्**) निश्चय ही (**सम् इद्धः**) संदीप्त (**भव**) हो। (**अस्मासु**) हम [इनसे] (**त्वं**) तू (**इत्**) निश्चय ही (**सम् इद्धः**) संदीप्त (**भव**) हो। (**अस्मासु**) हम [ब्रह्मचारियों] में (**आयुः**) जीवन, [और] **आचार्याय** (आचार्य) के लिए (**अमृतत्वम्**) अमरत्व (**धेहि**) प्रदान कर।

● मैं समित्पाणि होकर आचार्य के समीप उपनीत होने तथा विद्याध्ययन करने आया हूँ। अपने हाथ में मैं समिधायें इस निमित्त लाया हूँ कि इनसे मैं अग्निहोत्र करूँगा, समिधाओं को एक–एक कर अग्नि में आहुति दूँगा।

हे यज्ञाग्नि! ये तेरे लिए समिधायें हैं, इनसे तू समिद्ध हो, सम्यक् प्रकार से प्रदीप्त हो। देखो, ये शुष्क समिधायें, जो सर्वथा निस्तेज थीं, अग्नि में पड़कर प्रज्ज्वलित हो उठी हैं। ऐसे ही मुझे भी आचार्य–रूप अग्नि का ईंधन बनकर ज्ञान एवं सत्कर्मों से प्रज्ज्वलित होना है। मैं निपट अबोध–अज्ञानी बालक अप्रज्ज्वलित समिधाओं के समान ही निस्तेज हूँ, आचार्याधीन गुरुकुल–वास करके मुझे ज्ञान की ज्वालाओं से प्रदीप्त होना है।

आचार्य और ब्रह्मचारियों के मध्य में जलनेवाली हे यज्ञाग्नि! तू हम ब्रह्मचारियों को आयु प्रदान कर, हमारे अन्दर जीवन निहित कर। हम यही नहीं जानते कि इस संसार में किसलिए आये हैं और हमें कहाँ जाना है तथा जीवन किस प्रकार व्यतीत करना है। जीवन जीने की कला का बोध तू हमें करा। हे अग्नि! तू गुरुकुल की गुरु–शिष्य परम्परा का उज्ज्वल प्रतीक है। जो समिधाओं का और तेरा सम्बन्ध है, वही घनिष्ठ सम्बन्ध गुरुकुल में गुरु और शिष्यों का है। गुरुकुल के व्रतपालन, गुरुकुल की दिनचर्या, गुरुकुल के ज्ञानाग्नि–समिन्धन, गुरुकुल की कर्मपरायणता, गुरुकुल की तपस्या, गुरुकुल के संयम, गुरुकुल के योगानुष्ठान आदि सबका तू प्रतीक है। हे व्रतपति अग्नि! तुझमें समिधायें डालते हुए हम इन समस्त भावनाओं को अपने हृदय में धारण करते हैं।

हे गुरुकुलीय अग्निहोत्र की अग्नि! जहाँ तू हमें जीवन प्रदान करेगी, वहाँ हमारे आचार्य को अमृतत्व प्रदान कर। हम ही अपने आचार्य को मार सकते या अमर कर सकते हैं। हम तुझ अग्नि में तपकर ऐसे जीवन के धनी बनें कि हमसे आचार्य की कीर्ति चारों ओर फैले। जब कोई हमें गुणी और सत्कर्मनिष्ठ देखकर पूछेगा कि ये किस आचार्य के शिष्य हैं, तब हमारे आचार्य का नाम अमर होगा। हम यदि आचार्य के नाम को अमर करने में किंचिन्मात्र भी कारण बन सकेंगे, तो हम अपने को धन्य समझेंगे। हे गुरुकुल के अग्नि! तुम्हारी जय हो, हे गुरुकुल के पुण्यश्लोक आचार्य! तुम्हारी जय हो।

❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

तत्त्वज्ञान

● महात्मा आनन्द स्वामी

तत्त्वज्ञान विकृति रूप प्रकृति से छुटकारा दिलाकर मोक्ष–पद प्राप्त करा सकता है। तत्त्वज्ञान के चार साधनों में से विवेक, वैराग्य के पश्चात् षट् सम्पत्ति की बात चल रही थी। शम्, दम, उपरति और तितिक्षा का वर्णन करने के बाद स्वामी जी ने श्रद्धा रूपी पांचवीं सम्पत्ति पर बात करनी आरम्भ की।

श्रद्धा क्या है ? इसके उत्तर में स्वामी जी ने कहा श्रद्धा कहते हैं उस अटल विश्वास को जो पूरे अनुसन्धान के बाद किसी सत्य तत्त्व पर किया जाता है। ऋषि दयानन्द द्वारा कृत व्याख्या का प्रमाण दिया।

श्रद्धा के बिना मोक्ष–मार्ग पर आगे बढ़ना असंभव है। लेकिन श्रद्धा करने से पहले यह जांच करना आवश्यक है कि श्रद्धा क्यों और किस पर की जा रही है। वेद–ऋग्वेद, श्रद्धा की महिमा का गान करता है। लेकिन कोरा वितन्डावाद हमें श्रद्धा का माधुर्य चखने नहीं देता। संशय बने रहते हैं।

तब समाधान क्या है ? इसका उत्तर देते हुए कहा–चित्त की एकाग्रता तभी उत्पन्न होगी जब सारे संशय मिट जायेंगे। गीता के तीसरे अध्याय के अन्तिम आठ श्लोकों को प्रस्तुत कर स्वामी जी ने कहा मनुष्य को कुमार्ग पर ले जाने वाली कामनाओं (काम) का नाश करने से चित्त की एकाग्रता प्राप्त की जा सकती है।

मोक्ष के साधक – चतुष्टय में से चौथे 'मुमुक्षत्व' पर चर्चा आरम्भ की। शंकराचार्य के वचन **'मोक्षो से भूयादितीच्छा'** की ऋषि दयानन्द द्वारा की गई व्याख्या प्रस्तुत की। मुमुक्षु की स्थिति चातक जैसी होती है। साधक को केवल आत्मदर्शन की चाह के प्रेम में उन्मत हो उठने पर ही मुमुक्षु का पद मिल सकता है। संसार के जाल में न फँसकर उसकी वृत्ति हर समय दुःखों से छूटने और परम प्रिय परमात्मा से एक हो जाने की बनी रहती है।

तत्त्वज्ञान के इन चार साधनों का वर्णन ऋषियों ने किया है। सत्यार्थ प्रकाश के नवम उल्लास और 'विवेकचूड़ामणि' में भी मोक्ष के इन्हीं साधनों का वर्णन है। ..... **अब आगे**

साधक की तैयारी

तत्त्वज्ञान का अधिकारी बनने के लिए जिन चार विशेष साधनों का वर्णन किया गया है, इससे यह प्रकट हो गया कि कितनी बड़ी तैयारी तत्त्वज्ञान प्राप्त करने के लिए करनी होती है और वह वस्तु कितने बड़े महत्त्व की होगी, जिसको पाने के लिए इतना त्याग, इतना तप और इतना वैराग्य धारण करना पड़ता है।

इन चार साधनों के अतिरिक्त साधक ने श्रवण, मनन और निदिध्यासन की वाटिका में से गुज़रकर साक्षात्कार के चौक तक पहुँचना होता है। महर्षि दयानन्द के शब्दों में साधक को "सदा तमोगुण अर्थात् क्रोध, मलीनता, आलस्य, प्रमाद आदि, रजोगुण अर्थात् ईर्ष्या, द्वेष, काम, अभिमान, विक्षेप आदि दोषों से अलग होकर सत्त्व अर्थात् शान्त–प्रकृति, पवित्रता, विद्या, विचार आदि गुणों को धारण करना चाहिए।" "सुखी जनों में मित्रता, दुःखी जनों पर दया, पुण्यात्माओं से हर्षित होना, दुष्ट आत्माओं में न प्रीति और न वैर करना चाहिए।" "नित्यप्रति न्यून से न्यून दो घण्टापर्यन्त मुमुक्षु ध्यान करे, जिससे भीतर के मन आदि पदार्थ साक्षात् हों।" इसी सम्बन्ध में तत्त्वज्ञान का अधिकारी बनने के लिए महर्षि दयानन्द ने 'ऋग्वेदादिभाष्य–भूमिका के उपासना–विषय में पूरे अनुभव और बड़े महत्त्वपूर्ण आदेश दिए हैं। 'यजुर्वेद' के 11वें अध्याय का महला मन्त्र देकर लिखा है :

युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियः।
अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्याऽ अध्याभरत।।

यजु. 11.1.

'योग को करनेवाले मनुष्य (तत्त्वाय) तत्त्वज्ञान अर्थात् ब्रह्मज्ञान के पहले जब अपने मन को परमेश्वर में युक्त करते

हैं तब परमेश्वर उनकी बुद्धि को अपनी कृपा से अपने में युक्त कर लेता है। फिर वे परमेश्वर के प्रकाश को निश्चय करके यथावत् धारण करते हैं। पृथिवी के बीच में योगी का यही प्रसिद्ध लक्षण है।' और 'यजुर्वेद' के इसी अध्याय के तीसरे मन्त्र की व्याख्या में महर्षि ने लिखा है कि :

"वही अन्तर्यामी परमात्मा अपनी कृपा से उनको (साधकों को) युक्त करके उनके आत्माओं में प्रकाश **(बृहज्ज्योति)** को प्रकट करता है।"

इन दोनों मन्त्रों और महर्षि की व्याख्या से यह सिद्ध होता है कि तत्वज्ञान के अधिकारी के (हृदय) आत्मा में बृहज्ज्योति प्रकट हो जाती है, परन्तु यह तभी होता है, परमात्मा जब आप कृपालु होते हैं। अधिकारी बनने के लिए जहाँ और साधनों को साधक सम्पन्न करता है, वहाँ उसे प्रभु कृपा की भी प्रतीक्षा करनी होती है। इन साधनों को प्रयोग में लानेवालों को पूर्ण विश्वास दिलाने के लिए 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में यजुर्वेद के इसी अध्याय का पाँचवाँ मन्त्र भी दिया है जिसमें भगवान् की ओर से प्रतिज्ञा है और साधक के लिए पूरा आश्वासन है :

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्वि
श्लोक ऽ एतु पथ्येव सूरेः।
शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राऽ
आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः।।

यजु. 11.5.

'उपासना का उपदेश देनेवाले और ग्रहण करनेवाले, दोनों के प्रति परमेश्वर प्रतिज्ञा करता है कि जब तुम सनातन ब्रह्म की सत्य–प्रेमभाव से अपने आत्मा को स्थिर करके नमस्कारादि रीति से उपासना करोगे, मैं तब तुमको आशीर्वाद देऊँगा कि सत्य–कीर्ति तुम दोनों को प्राप्त हो। किसके समान ? जैसे परम विद्वान् को धर्म–मार्ग यथावत् प्राप्त होता है, इसी प्रकार तुमको सत्य–सेवा से सत्य–कीर्ति प्राप्त हो। फिर भी मैं सबको उपदेश करता हूँ कि–हे मोक्ष मार्ग के पालन करनेवाले मनुष्यो ! तुम सब लोग सुनो कि जो दिव्य लोकों अर्थात् मोक्ष सुखों को पूर्व प्राप्त हो चुके हैं, उसी उपासना–योग से तुम लोग भी उन सुखों को प्राप्त होओ। इसमें सन्देह न करो, इसलिए मैं तुमको उपासना–योग में युक्त करता हूँ।'

स्वयं भगवान् की ओर से इतना बड़ा आश्वासन पाकर तो साधक उछल पड़ेगा और वह आत्म–दर्शन तथा तत्त्वज्ञान के मार्ग पर तीव्रता से अग्रसर होगा परन्तु एक बार फिर ध्यानपूर्वक वेद भगवान् का यह आदेश सुन लो कि :

अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सह योगं भजन्तु मे।। अथर्व. 16.8.2.

'अट्ठाईस की सेना जो मेरे साथ है, हे शिव ! वह भी उपासना–योग में प्रवृत्त होकर उसी में लगी रहे।' यह 28 की सेना कौन–सी है जिसका संकेत वेद भगवान् ने किया है, यह सेना है :

दश इन्द्रियाँ, दश प्राण, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, विद्या, स्वभाव, शरीर और बल, ये अट्ठाईस के अट्ठाईस जब तक साथ नहीं देते और सब–के–सब उपासना–मार्ग पर अग्रसर नहीं होते, तब तक सफलता कहाँ ? स्थूल शरीर से लेकर सूक्ष्म से सूक्ष्म इन्द्रिय तथा भावना तक ये सारे–के–सारे आत्मा के सच्चे मित्र और सङ्गी बनकर प्रभु से युक्त होने के लिए जब कटिबद्ध हो जाते हैं, फिर तो प्रभु की कृपा स्वयमेव ज्योति के रूप में प्रकट हो जाती है और साधक को तत्त्वज्ञान का अधिकारी घोषित कर देती है। **{यहाँ आठवाँ अध्याय समाप्त हो जाता है।}**

(नवम् अध्याय)

बाल्यकाल की कथा

बाल्यकाल में अपने पुरोहित जी से एक कथा सुनी थी। कितना ही समय बीत गया–छप्पन वर्ष से अधिक। मेरी आयु तब 12 वर्ष की थी। व्यास–पूजा का दिन था। भगवान् वेदव्यास के जीवन की कितनी सुन्दर बातें पण्डित जी ने सुना डालीं। उनमें से एक घटना ने मेरे हृदय पर छाप–सी लगा दी। यह थी सरस्वती नदी के तट की घटना। अकेले ही बैठे थे श्री वेदव्यास जी। आज उनका चित्त कुछ खिन्न–सा था, मुख पर उदासी थी। अपने आप ही बोल उठे – "बाल्य–काल में सदाचारी रहा। वेद, गुरु, अग्नि की सेवा निष्कपट भावना तथा शुद्ध अन्तःकरण से की, सदा उनकी आज्ञा–पालन को कर्त्तव्य समझा। वेद–आदेश सर्वसाधारण के पास भी पहुँच जाएँ – इस उद्देश्य से ग्रन्थ भी लिखे, परन्तु यह क्या बात है कि जीवात्मा फिर भी प्रसन्न नहीं ? ऐसा प्रतीत होता है कि मैं अभी किसी त्रुटि के कारण कृतार्थ नहीं हुआ।" यह कह ही रहे थे कि इतने में देवर्षि नारद सामने से आते दिखाई दिए।

श्री नारद मुनि जी के आते ही श्री वेदव्यास जी उनसे कहने लगे–"नारद जी ! आप सारे देशों में शान्ति और आनन्द का प्रसार करते हैं, कृपया मुझे भी बतलाइए कि इतनी विद्या प्राप्त करने के पश्चात् भी मेरे में क्या न्यूनता है कि मुझे अपेक्षित शान्ति प्राप्त नहीं हुई ?"

उत्तर में नारद जी ने कहा – "विप्रर्षि ! आपने अपनी ओर से तो कोई बात उठा नहीं रखी परन्तु अभी एक न्यूनता रह गई, उसी के कारण अभी पूरी प्रभुकृपा नहीं हुई और जब तक प्रभुकृपा नहीं तब तक शान्ति कहाँ ? और प्रभुकृपा होती है ईश के साथ सच्ची रति (प्रेम) होने से। इसी को भगवान् के प्रति **अनन्य भक्ति** कहते हैं।"

इस कथा को सुनने के पश्चात् बाल्यकाल से युवा–अवस्था आई। तरुणाई के पीछे अधेड़ आयु आई, फिर आई वृद्ध अवस्था। परन्तु यह कथा हृदय में कुछ ऐसी समाई कि किसी अवस्था में विस्मृत न हो सकी।

अनन्य भक्ति क्या है ?

यह अनन्य भक्ति क्या है जिसके बिना शान्ति मिलती ही नहीं ? महर्षि पतञ्जलि ने 'योगदर्शन' में इसी का नाम **'ईश्वरप्रणिधान'** रखा है। गीता ने इसी को **'शरणागति'** कहा है और इसी द्वारा समाधि तक पहुँचने का विधान किया है। साथ ही यह आदेश किया है कि ईश्वर–प्रणिधान से सारे विघ्नों का नाश होकर परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है। महर्षि स्वामी दयानन्द ने इसी का नाम **'उपासना'** रखा है और बतलाया है कि **"उपासना का फल ईश्वर के अनुग्रह ही से प्राप्त होता है।"** वह फल कैसा है जो परिपक्व, शुद्ध–परम–आनन्द से भरा हुआ और मोक्ष–सुख का प्राप्त करानेवाला है ? यह उपासना–योग–वृत्ति सब क्लेशों का नाश करनेवाली और सब शान्ति आदि गुणों से पूर्ण है। महर्षि ने मुक्ति का 'उत्तम साधन' उपासना ही को बतलाया है और समाधि अवस्था प्राप्त करने के लिए ईश्वर–प्रणिधान भी साधन बतलाया है और इसका अर्थ किया है–**'ईश्वर में विशेष भक्ति'**।

महर्षि दयानन्द यही आदेश देते रहते थे कि ईश्वर–कृपा प्राप्त करो। 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' के ईश्वर–प्रार्थना विषय में महाराज लिखते हैं–"जो जगदीश्वर अपनी कृपा से ही अपने आत्मा को विज्ञान देनेवाला है,..... "जिसका आश्रय करना ही मोक्ष–सुख का कारण है और जिसकी अकृपा (कृपा न होना) ही जन्म–मरण–रूप दुःखों को देनेवाली है, उस परमेश्वरदेव की प्राप्ति के लिए सत्य, प्रेम, भक्तिरूप सामग्री से हम लोग नित्य भजन करें, जिससे हम लोगों को किसी प्रकार का दुःख कभी न हो।"

'कठोपनिषद्' में यम ने भी तो यही कहा था :

यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूस्वाम्। कठो. 2.23।।

'यह परमात्मा जिसके ऊपर कृपा करता है, वही इसे प्राप्त कर पाता है। उसी के लिए वह अपने यथार्थ स्वरूप को प्रकाशित कर देता है।'

यह भक्ति किस प्रकार से की जाती है ? इसके सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द लिखते हैं :

"अब उसकी भक्ति किस प्रकार से करनी चाहिए ? सो आगे लिखते हैं–जो ईश्वर का ओंकार नाम है सो पिता–पुत्र के सम्बन्ध के समान है। इसी नाम का जप अर्थात् स्मरण और उसी का अर्थ– विचार सदा करना चाहिए कि जिससे उपासक का मन एकाग्रता, प्रसन्नता और ज्ञान को यथावत् प्राप्त होकर स्थिर हो, जिससे उसके हृदय में परमात्मा का प्रकाश और परमेश्वर की प्रेम भक्ति सदा बढ़ती जाए।" **{ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, उपासना–विषय}**

जब भक्ति से परमात्मा का प्रकाश और परमेश्वर का प्रेम बढ़ता है, तब भक्त प्रसन्नता के हिलोरे लेने लगता है। भक्ति प्रभुप्रेम की वह उच्चतम अवस्था है जहाँ पहुँचकर भक्त अपने–आपको भी खोया हुआ पाता है और मग्न होकर धीमे–धीमे कहता है :

"अब हम गुम हुए–गुम हुए प्रेम नगर के शहर।" तब भगवान् का नाम–स्मरण, प्रभु–गाथा, प्रभु–कीर्तन और प्रभु–वार्ता के अतिरिक्त साधक को और कुछ भी अच्छा नहीं लगता। वह परमात्मा ही को अपना एकमात्र आश्रय, परमगति और सर्वस्व समझने लगता है,संसार के सारे सम्बन्धों से बढ़कर परमात्मा ही से अपना एकमात्र गूढ़ सम्बन्ध अनुभव करता है, अब वह लज्जा, भय, मान, बड़ाई, आसक्ति से ऊपर उठ जाता है, ममता से रहित हो जाता है, अनन्य–भाव से, पूरी श्रद्धा से, अत्यन्त प्रेम से, परमात्मा ही का आज्ञा–पालन, प्रभु ही का गुण–वर्णन और उसी का जप करना उसे प्रिय लगता है, वह किसी से वैर नहीं रखता। सर्वदा सबसे प्रीति करता है, सत्य–भाषण करता है, जितेन्द्रिय हो जाता है और निरभिमानी हो जाता है। कारण वह ऋषि दयानन्द के शब्दों में और 'कठोपनिषद्' के आदेश से जानता है कि–

"यह उपासना प्रयोग दुष्ट मनुष्यों को सिद्ध नहीं होता क्योंकि जब तक मनुष्य दुष्ट कामों से अलग होकर अपने मन को शान्त और आत्मा को पुरुषार्थी नहीं करता, भीतर के व्यवहारों को शुद्ध नहीं करता, तब तक कितना ही पढ़े वा सुने, उसको परमेश्वर की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती। जो मनुष्य धर्माचरण से परमेश्वर और उसकी आज्ञा में अत्यन्त प्रेम करके अरण्य अर्थात् शुद्ध हृदयरूपी वन में स्थिरता के साथ निवास करते हैं, वे परमेश्वर के समीप वास करते हैं।'

क्रमशः

हमारा बनाने वाला

● स्व. गंगाप्रसाद उपाध्याय

"हमारा बनाने वाला कौन है ?" यह प्रश्न हर एक बुद्धिमान् पुरुष के मन में उठता है। संसार में दो प्रकार की वस्तुएँ दिखाई देती हैं–एक वह जिनको किसी मनुष्य या अन्य प्राणियों ने बनाया है और दूसरी वह जिनका बनाने वाला दिखाई नहीं पड़ता। हम बया आदि को घोंसला बनाते देखते हैं इसलिए संसार में जहाँ कहीं कोई घोसला दीखता है वहाँ तुरन्त ही यह भी विचार हो जाता है कि इसको किसी चिड़िया ने बनाया है। इसी प्रकार मकान, मेज़ आदि को भी मनुष्यों द्वारा बनते देखा है इसलिए ताजमहल आदि बड़े–बड़े मकानों या रेल आदि यानों को देखते हैं तो देखते ही यह परिणाम निकाल लेते हैं कि किसी न किसी आदमी ने ही इनका निर्माण किया है। यह हमारा अनुमान प्रमाण है, यह कभी ग़लत नहीं होता, हमको इसकी सत्यता में कोई सन्देह नहीं है। यह बात निश्चित है। वे लोग भी जो अनुमान प्रमाण की प्रामाणिकता स्वीकार नहीं करते, अपने जीवन के व्यवहार से यही सिद्ध करते हैं कि अनुमान प्रमाण अवश्य है। यदि वे किसी पुस्तक को देखते हैं तो झट पूछते हैं यह किसने बनाई, कहाँ छपी इत्यादि ? उनको कभी सन्देह नहीं होता कि सम्भव है यह पृथ्वी में से वनस्पतियों की भाँति उगी हो अथवा वृक्ष पर फल फूल के समान लगी हो।

परन्तु संसार में बहुत सी वस्तुएँ ऐसी हैं जिनको हमने या किसी अन्य मनुष्य ने कभी किसी को बनाते नहीं देखा। पहाड़, नदियाँ, पृथ्वी, सूर्य, चाँद आदि को किसने बनाया ? यह प्रश्न है। 'मनुष्य को किसने बनाया ?' यह भी प्रश्न है। जो यह कह देते हैं कि मनुष्य को माँ–बाप ने बनाया वह तो ऐसा कहकर अपनी अज्ञता ही दर्शाते हैं क्योंकि माँ–बाप को मनुष्य के शरीर की रचना का कुछ भी ज्ञान नहीं। जो घड़ी को बनाता है वह घड़ी के पुर्जों को भली प्रकार जानता है। बिना पुर्जों का ज्ञान हुए कोई किसी चीज को बना ही नहीं सकता। माँ–बाप को बच्चों के शरीर के विषय में कुछ भी ज्ञान नहीं। जो घड़ी को बना सकता है वह घड़ी को सुधार भी सकता है। यदि माँ अपने बच्चों को बनाने वाली होती तो रोगी बच्चे को डाक्टर तथा वैद्यों के पास लिए लिए न फिरा करती। जिस माँ को यह नहीं मालूम कि मेरे पेट में लड़की है या लड़का, काना है या अन्धा, लूला है या लंगड़ा, उसको बच्चे का बनाने वाला कभी नहीं कह सकते। कुतिया कुत्तों के पिल्लों को उसी प्रकार जानती है जैसे स्त्री मनुष्य के बच्चों को। चिड़िया उसी प्रकार अण्डे देती है जैसे चींटियाँ। परन्तु न स्त्री को, न चिड़िया वा चींटी को अपने बच्चों के विषय में कुछ भी ज्ञान है। कुत्ते के पिल्ले की शरीर रचना उस विचित्र से विचित्र कल से भी विचित्र है जिसको बुद्धिमान से बुद्धिमान पुरुष बनाता है। यदि कुतियाँ पिल्ले की बनाने वाली होती तो वह अवश्य ही उस बुद्धिमान पुरुष से अधिक बुद्धिमती होती।

मनुष्य, सूर्य, चाँद, तथा सृष्टि की अन्य वस्तुओं के निर्माण के विषय में कई प्रकार के मत हैं। एक मत तो यह है कि इनको बनाने वाली सूक्ष्म अदृष्ट पूर्णज्ञान तथा शुद्ध स्वभाव और महती शक्तिशाली एक सत्ता है जिसका नाम ईश्वर है। भिन्न– भिन्न लोग इसको भिन्न–भिन्न नामों से पुकारते हैं– "**एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति।**" कोई उसको खुदा कहता है, कोई गॉड, कोई परमेश्वर, कोई ब्रह्म इत्यादि। इस सत्ता के मानने वाले आस्तिक कहलाते हैं। परन्तु कुछ लोग ऐसे भी हैं जो अपने को नास्तिक कहते हैं और सत्ता को नहीं मानते। उनके मन में भी आस्तिकों के समान यह प्रश्न उठता है कि हमको किसने बनाया है ? परन्तु वे इसका उत्तर भिन्न प्रकार से देते हैं। एक कहता है कि इस सृष्टि का बनाने वाला कोई नहीं। केवल स्वभाव या कुदरत से सब चीज़ें बन जाती हैं। जैसे शराब बनाने के पदार्थों को एक प्रकार से इकट्ठा कर देने से नशे वाली शराब स्वयं ही बन जाती है या चूना और हल्दी मिला देने से रोरी बन जाती है इसी प्रकार भिन्न–भिन्न परमाणुओं के परस्पर मिलने से सृष्टि की समस्त वस्तुएँ बनती रहती हैं। उनसे पूछा जाए कि सूर्य को किसने बनाया है ? तो वे उत्तर देते हैं "कुदरत ने।"

कुछ लोग कहते हैं कि सृष्टि को किसी ने नहीं बनाया। अकस्मात् ही (By chance) यह इस प्रकार की बन गई है। बहुधा देखा गया है कि कोई कीड़ा पृथ्वी पर रेंगते–रेंगते कोई अक्षर भी बना देता है। वस्तुतः कीड़े का यह तात्पर्य नहीं होता कि अमुंक् अक्षर बने। इसी प्रकार सृष्टि भी अकस्मात् ही बन जाती है। वह कहते है कि यदि वस्तुतः सृष्टि का बनाने वाला कोई होता तो सृष्टि ऐसी बुरी न होती जैसी आजकल दीखती है। एक संस्कृत का कवि कहता है–

गन्ध सुवर्णे फलमिक्षुदण्डे,
नाकारि पुष्पं खलु चन्दनेषु।
विद्वान् धनाढ्यो नृप दीर्घजीवी,
धातुस्तदा कोपि न बुद्धिदोऽभूत।।

अर्थात् न सोने में सुगन्ध दी, न ईख में फल दिया, न चन्दन में फूल दिया, न विद्वान को धन दिया और और न राजा को दीर्घजीवी किया। इससे प्रतीत होता है कि सृष्टि के रचने वाले को बुद्धि देने वाला कोई था ही नहीं।

यह तो कवि की कविता रही परन्तु बहुत से दार्शनिकों ने भी सृष्टि में दोष दिखलाने की कोशिश की है। कोई कहता है कि यदि सूर्य को इस प्रकार से बनाया जाता कि रात में भी प्रकाश दे सकता तो अच्छी बात होती। कोई कहता है कि मनुष्य की आँख ऐसी बुरी बनाई है कि इसमें बहुत सी त्रुटियाँ रह गई हैं। यदि वस्तुतः कोई ज्ञानवान शक्ति इसको बनाती तो इन त्रुटियों को रहने न देती। कोई कहता है कि संसार में इतना दुःख है कि हम कभी इनको पूर्णज्ञानी ईश्वर का बना हुआ नहीं मान सकते। मनुष्यों के सिर कोई न कोई विपत्ति आती ही रहती है। कहीं भूकम्प आया, कहीं बाढ़ आ गई, कहीं जंगल में आग लग गई। जिस संसार में इतना दुःख हो उसको सर्वज्ञ, शुद्ध हितचिन्तक और प्रेममय ईश्वर का बना हुआ मानना मूर्खता नहीं तो क्या है ? इससे वह यही नतीजा निकालते हैं कि घुणाक्षर न्याय के अनुकूल परमाणुओं के अकस्मात् (by chance) मिलने से ही सृष्टि बनती है। इस प्रकार सृष्टि के कारण चार बताए जाते हैं :–

(1) ईश्वर (2) स्वभाव (3) कुदरत (4) अकस्मात् घुणाक्षर न्यायवत्।

हम अन्तिम मत से आरम्भ करके क्रमशः एक–एक की संक्षिप्त मीमांसा करते हैं।

वस्तुतः सृष्टि के किसी काम को देखकर यह प्रतीत नहीं होता कि घुणाक्षर न्यायवत् सृष्टि बन गई हो। हमको प्रत्येक काव्य में एक विचित्र नियम दिखाई देता है। यदि घुणाक्षर न्याय के समान सृष्टि होती तो साइंस या विज्ञान, की कभी उन्नति नहीं हो सकती थी। 'विज्ञान' का क्या काम है, यही न कि उन नियमों का पता लगाए जो सृष्टि में कार्य कर रहे हैं। भिन्न–भिन्न विज्ञान भिन्न–भिन्न नियमों की मीमांसा करते हैं, रात–दिन वैज्ञानिक लोग इन्हीं नियमों की खोज में लगे रहते हैं। एक पुरुष ने ठीक ही कहा है कि यदि छापेखाने के कम्पोजीटर लोग भिन्न–भिन्न टाइपों को करोड़ों वर्षों तक उछालते रहें तो भी कभी शेक्सपियर के नाटकों को नहीं बना सकते। शेक्सपियर के नाटकों में जो अक्षर की योजना है वह अकस्मात् नहीं किन्तु नियमपूर्वक है और उससे शेक्सपियर की बुद्धि का बोध होता है। यदि अक्षरों के स्वयं उछलने से पुस्तक विशेष नहीं बन सकती तो परमाणुओं के एक दूसरे के साथ मेल खाते रहने से अकस्मात् सूर्य और चाँद जैसे प्रकाशक लोक, नदी पर्वत जैसी चमत्कार पूर्वक वस्तुएँ और शरीर जैसी अद्भुत कलें नहीं बन सकतीं। जो पुरुष सृष्टि में भिन्न–भिन्न त्रुटियाँ बताते हैं उनकी दृष्टि अति क्षुद्र है। वह सृष्टि के एक अंग को ही देखते हैं और मनमानी बात को आदर्श समझ लेते हैं। उनका हाल उस बालक के समान है जो अपनी पट्टी पर लकीर करके अपने पिता से कहता है कि "तुम छोटे–छोटे अक्षर क्यों लिखते हो ? मेरे समान बड़े–बड़े क्यों नहीं लिखते।" जो पुरुष आँख की बनावट में दोष निकालते हैं उन्होंने आज तक दोष–रहित एक आँख भी बनाकर नहीं दी और न वह आँख जिसको यह लोग दोषरहित कहना चाहते हैं इस प्रकार की है कि उसमें दूसरा कोई दोष न निकाल सके। कल्पना करो कि मैंने रोटी पकाने के लिए एक मकान बनवाया। जो पुरुष उसको सोने का कमरा बनाना चाहता है उसको उसमें अनेक दोष प्रतीत होंगे और जिस कमरे को उसने प्रयोजन के विचार से आदर्श कहा उसको वह पुरुष जो उसे स्वाध्याय का कमरा बनाना चाहता है दोषयुक्त कहेगा। यही हाल

शेष पृष्ठ 05 पर ☞

संसार में बहुत सी वस्तुएँ ऐसी हैं जिनको हमने या किसी अन्य मनुष्य ने कभी किसी को बनाते नहीं देखा। पहाड़, नदियाँ, पृथ्वी, सूर्य, चाँद आदि को किसने बनाया ? यह प्रश्न है। 'मनुष्य को किसने बनाया ?' यह भी प्रश्न है। जो यह कह देते हैं कि मनुष्य को माँ–बाप ने बनाया वह तो ऐसा कहकर अपनी अज्ञता ही दर्शाते हैं क्योंकि माँ–बाप को मनुष्य के शरीर की रचना का कुछ भी ज्ञान नहीं। जो घड़ी को बनाता है वह घड़ी के पुर्जों को भली प्रकार जानता है। बिना पुर्जों का ज्ञान हुए कोई किसी चीज को बना ही नहीं सकता।

योग : ज्ञान और अनुभव की समन्वित साधना

● डॉ. अमित शर्मा

वर्तमान समय में योग केवल भारत तक सीमित नहीं रह गया है, अपितु समूचे विश्व में एक आध्यात्मिक, मानसिक तथा शारीरिक स्वास्थ्य की आधारशिला के रूप में स्थापित हो चुका है। प्रतिवर्ष 21 जून को 'अंतरराष्ट्रीय योग दिवस' के रूप में विश्व के अनेक देशों में योगाभ्यास किया जाता है, परंतु क्या हमने कभी गहराई से यह सोचा है कि योग की आत्मा क्या है?

क्या योग केवल शारीरिक व्यायामों की एक शृंखला है या यह जीवन जीने की एक समग्र एवं सुसंस्कृत दृष्टि है?

भारतीय मनीषियों ने योग को केवल कसरत या ध्यान–धारणा का माध्यम नहीं माना, बल्कि ज्ञान और अनुभव के समन्वय से जीवन के पूर्ण विकास की साधना के रूप में देखा है। योग वह साधना है जिसमें शास्त्र का गूढ़ ज्ञान और उस ज्ञान की अनुभूति–दोनों का सम्यक् समागम आवश्यक है। यही समन्वय योग को केवल क्रिया नहीं, बल्कि एक पूर्ण जीवनशैली बनाता है।

योग : शास्त्रजन्य ज्ञान का प्रकाश

योग का मूल स्वरूप समझने के लिए हमें उसके शास्त्रीय आधारों की ओर जाना होगा। पतञ्जलि योगसूत्र, भगवद्गीता, उपनिषद्, हठयोगप्रदीपिका, गोरक्षशतक जैसे ग्रंथों ने योग की संरचना को तत्त्वतः परिभाषित किया है।

महर्षि पतंजलि कहते हैं:

"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः"–अर्थात् योग मन की चेष्टाओं का निरोध है।

यह सूत्र बताता है कि योग मन के ऊहापोह से परे, एक केंद्रित, शांत और आत्मबोध की दिशा में उन्मुख स्थिति है।

भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को कर्म, ज्ञान, भक्ति और योग के माध्यम से जीवन का मर्म सिखाते हैं। वहाँ योग आत्मा की स्थिति, जीवन के उद्देश्य और चित्त की स्थिरता के साथ जुड़ा हुआ है, न कि केवल शरीर संचालन से।

शास्त्र हमें केवल 'क्या करना है' यह नहीं बताते, बल्कि 'क्यों करना है' और 'कैसे करना है' यह भी सिखाते हैं। यही ज्ञान साधक को उद्देश्य, दिशा और अनुशासन देता है।

अनुभव : योग की जीवंतता का आधार

योग का दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष है–अनुभव। यदि ज्ञान दीपक है तो अनुभव उसका प्रकाश है। योग के सिद्धांत तभी जीवंत बनते हैं जब वे हमारे अनुभवों में उतरें।

किसी ने ठीक ही कहा है–"बिना अनुभव के ज्ञान केवल बोझ है।"

जब कोई साधक निरन्तर अभ्यास करता है–चाहे वह प्राणायाम हो, ध्यान हो, आसन हो या यम–नियम–तब वह अनुभव के स्तर पर चित्त की शुद्धि, प्राण की स्थिरता और आत्मा के प्रकाश को महसूस करता है।

गीता में कहा गया है:

"अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।" (6.35) "हे अर्जुन! यह चंचल मन केवल अभ्यास और वैराग्य से ही वश में किया जा सकता है।"

आज योग स्टूडियो, ऑनलाइन क्लासेस, ट्रेनर सर्टिफिकेट की भरमार है, लेकिन जब तक साधक स्वयं योग की अनुभूति में उतरकर उसे अपने जीवन का हिस्सा नहीं बनाता, तब तक वह केवल 'योगाभ्यासकर्ता' ही रहता है, 'योगी' नहीं।

ज्ञान और अनुभव : सम्यक योग की दो भुजाएँ

योग की साधना में ज्ञान और अनुभव की भूमिका दो पक्षों की भाँति है जो मिलकर सम्पूर्णता की ओर ले जाती हैं। ज्ञान साधक को यह सिखाता है कि मार्ग क्या है, कहाँ जाना है, किससे बचना है, क्या उद्देश्य है। अनुभव बताता है कि यह मार्ग कैसे तय करना है, किन कठिनाइयों से गुजरना है और कैसे आत्मशांति प्राप्त करनी है। यदि कोई साधक केवल अनुभव पर चले और ज्ञान को न अपनाए, तो वह भ्रम में पड़ सकता है और यदि कोई केवल शास्त्र पढ़े, पर अनुभव की दिशा में न बढ़े, तो वह शुष्क बौद्धिकता में उलझा रह जाएगा।

"ज्ञानं परं तु तद्भावानुभवेन न संशयः।"–"ज्ञान की चरम स्थिति अनुभव द्वारा ही साकार होती है।"

आधुनिक समय में इसकी प्रासंगिकता

आज का युग तीव्र भागदौड़, तनाव और मानसिक विक्षोभ का युग है। जीवन में स्थिरता, संतुलन और आत्मसंयम लाना अब एक आवश्यकता बन गया है।

यहीं योग की प्रासंगिकता बढ़ जाती है परन्तु खेद की बात है कि आज योग का प्रचार केवल एक 'शारीरिक व्यायाम पद्धति' के रूप में किया जा रहा है। उसका ज्ञान पक्ष उपेक्षित होता जा रहा है और अनुभव को केवल 'फिटनेस' तक सीमित कर दिया गया है।

अतः आज आवश्यकता है एक ऐसे योगबोध की, जो शास्त्र पर आधारित हो, और अभ्यास से पुष्ट हो। जिसमें गीता की आत्मा भी हो, और पतंजलि की प्रणाली भी।

योग एक साधना, एक दर्शन, एक जीवन

योग कोई तकनीक नहीं, बल्कि एक 'जीवन–दर्शन' है। यह हमें शरीर से आत्मा की ओर, आत्मा से ब्रह्म की ओर ले जाने वाला सेतु है। योग का सही स्वरूप तभी सामने आता है जब ज्ञान और अनुभव दोनों में संतुलन हो।

आज जब विश्व योग की ओर देख रहा है, तब भारत को चाहिए कि वह केवल 'योगासन' ही नहीं, बल्कि 'योगदर्शन' को भी विश्व के सम्मुख प्रस्तुत करे।

"श्रद्धावान् लभते ज्ञानं, तत्परः संयतेन्द्रियः। ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।।"

(भगवद्गीता 4.39)

अतः योग को यदि सही रूप में अपनाना है तो हमें ज्ञान और अनुभव–इन दोनों को समान रूप से अपने जीवन में स्थान देना होगा। यही समन्वय योग की आत्मा है, यही उसकी शक्ति है, और यही उसकी सार्वकालिक प्रासंगिकता।

विशेष निवेदनः

आइए, इस योगदिवस पर हम संकल्प लें कि हम योग को केवल एक क्रिया नहीं, बल्कि एक समग्र जीवनशैली के रूप में अपनाएँगे। ज्ञान प्राप्त करेंगे, अभ्यास करेंगे, और उसे अपने व्यवहार में लाकर संपूर्ण मानवता के कल्याण हेतु प्रयत्नशील रहेंगे।

सहायकाचार्य, संस्कृत विभाग,
डी.ए.वी. शताब्दी महाविद्यालय,
फरीदाबाद

☞ पृष्ठ 04 का शेष

हमारा बनाने वाला

सृष्टि का है। वर्षा हो रही है, किसान खुश हो रहा है क्योंकि खेती को उससे लाभ होगा। अनाज का व्यापारी रो रहा है क्योंकि उसका उद्देश्य महंगा अनाज बेचना है। वर्षा होगी तो अनाज बहुत होगा और महंगा न बिक सकेगा। सृष्टि को भिन्न–भिन्न मनुष्यों के दृष्टिकोण से नहीं बनाया गया। न तो उसमें त्रुटियाँ हैं न वह आकस्मिक बन गई है।

जो लोग कहते हैं कि सृष्टि को कुदरत (Nature) ने बनाया है वे तो शब्द–जाल में फँसे हुए है क्योंकि कुदरत या नेचर बनाने वाले का नाम नहीं किन्तु चीज़ के बनाने का ही नाम है। यदि पूछा जाए कि 'रोटी किसने बनाई ?' और उत्तर दिया जाए कि 'रसोई ने तो यह ठीक उत्तर न होगा क्योंकि 'रसोई' के अन्तर्गत ही रोटी आ जाती है। इसी प्रकार कुदरत या नेचर के अन्तर्गत ही संसार की सब वस्तुएँ आ जाती हैं। बहुत से लोग किसी कार्य का कारण न बतलाकर उस कार्य का ही दूसरा नाम 'कारण' के स्थान में ले देते हैं यह बड़ी भूल है। जैसे यदि किसी वैद्य से पूछो कि "अमुक पुरुष की मृत्यु का क्या कारण है ?" तो वह कहता है, "हृदय की गति रुक गई।" यहाँ वस्तुतः "हृदय की गति रुक जाना" और 'मृत्यु' दोनों पर्य्यायवाची (समानार्थक) हैं, कारण और कार्य नहीं। "मृत्यु ही हृदय की गति का रुकना है" और "हृदय की गति रुकना ही मृत्यु है" तो इसका यह उत्तर कदापि न होगा कि उसे ज्वर है। 'ज्वर' बीमारी का एक रूप है कारण नहीं। इसी प्रकार कुदरत या नेचर ही सृष्टि है और सृष्टि ही कुदरत या नेचर है। बीज का पृथ्वी में पड़कर खाद आदि की सहायता से उग आना ही सृष्टि है और यही कुदरत या नेचर है। नेचर इसके अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु नहीं।

अब रहा स्वभाव का प्रश्न यदि परमाणुओं में स्वयं मिल कर वस्तु बनाने का स्वभाव होता हो मनुष्य या अन्य प्राणियों को किसी चीज़ के बनाने की ज़रूरत न पड़ती। जो परमाणु अपने स्वभाव से ही वृक्ष बना सकते थे उन्हीं परमाणुओं से उसी स्वभाव की प्रेरणा से मेज़, सन्दूक और कुर्सी भी बन सकती थी। जिन परमाणुओं से स्वभाव द्वारा पहाड़ बनते हैं उनसे मकान भी बनने चाहिए थे क्योंकि यह तो मानता पड़ेगा कि जिन परमाणुओं से मेज, बनी है वह उन परमाणुओं के स्वभाव के विरुद्ध नहीं बनी। यदि मेज़ का बनना उन परमाणुओं के स्वभाव के विरुद्ध होता तो कोई

शेष पृष्ठ 08 पर ☞

शतांक से आगे...

सहृदय और साम्मनस्य युक्त करता हूँ तुम्हें

(प्रथम रश्मि)

● आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार

प्रभुकृपा से घर–परिवार के मनुष्यों में जब सहृदयता होती है तो फिर वे एक–दूसरे के दुःख–सुख को अपना ही दुःख–सुख समझ कर सब कार्य करने लगते हैं। इस प्रकार फिर वह घर–परिवार वा समाज बड़ा ही सुखी रहता है। यहाँ तक कि दुःख के दिन भी फिर उनके सहज रूप से ही व्यतीत हो जाते हैं।

घर में पत्नी बीमार होती है तो पति सहृदयता के कारण उसके कष्ट को अपना कष्ट मान लेता है। उसके कष्ट को अपना कष्ट मानने पर फिर उसमें साम्मनस्य–समान मनस्कता पैदा होती है। तब वह अपनी नारी के समान ही उसका कष्ट दूर करना चाहता है इसलिए वह इसके लिए दौड़–धूप करता है, दवा–दारु करता है, मौसमी, अंगूर आदि फल लाता है, खान–पान की हल्की–फुलकी वस्तु लाता है, जिससे कि उसकी पत्नी शीघ्र ही पुनः पूर्ववत् स्वस्थ होकर अपने घर–परिवार को सम्भाल कर प्रसन्न रह सके। नारी भी जब पति के कष्ट को देखती है और सोचती है कि वह उसके मायके चले जाने पर या रुग्ण हो जाने पर स्वयं दाल–रोटी आदि बनाता है, या दुग्ध आदि गर्म करके पी लेता है, या फिर कभी आलस्य वश बिना कुछ बनाए और खाए, पिए ही अपने कार्य पर चला जाता है, या सो जाता है, तो फिर उसको नारी बहुत अनुभव करती है। फिर वह शीघ्रातशीघ्र ही मायके से पति की सेवार्थ भागी चली आती है और अगर वह स्वयं ही रोगग्रस्त हो जाती है तो फिर वह शीघ्रातिशीघ्र ओषधादि लेकर, अनुकूल पदार्थों का सेवन करती हुई प्रभु से प्रार्थना करती है कि प्रभु उसे शीघ्र ठीक करे, स्वस्थ करे, ताकि वह अपने पति, पुत्रों एवं आए–गए की जी–जान से सेवा–शुश्रूषा आदि कर सके और अपने घर–परिवार को सुखी बना सके।

माँ–बाप अपने बच्चों की आवश्यकताओं को जब सहृदयतावश देखते हैं वा उनकी इच्छाओं–कामनाओं को देखते हैं, तो तब उनमें साम्मनस्य पैदा होता है, उनके समान सोचना–विचारना और चाहना आरम्भ हो जाता है, तभी तो फिर वे तुरन्त उन बच्चों की आवश्यकताओं की, उनकी इच्छाओं की पूर्त्ति के लिए अपनी आवश्यकताओं तथा इच्छाओं को गौण कर देते हैं। उस समय बच्चों की इच्छाओं और आवश्यकताओं के पूर्ण होने पर बच्चों को जो प्रसन्नता, जो खुशी होती है, उसे देखकर उनके माँ–बाप को उनसे भी बढ़कर प्रसन्नता होती है।

एक बच्चा नवीं कक्षा में आया। स्कूल दूर था। पुत्र ने अपने माँ–बाप से कहा कि–"पिताजी! आप मुझे साईकिल ला दो, क्योंकि स्कूल इतना दूर है कि बहुत–सा समय तो मेरा आने–जाने में ही लग जाता है।" या फिर यों ही बच्चे की साईकिल लेने की इच्छा हुई और उसने अपने माता–पिता से साईकिल की इच्छा अभिव्यक्त की। इस पर माता–पिता में सहृदयता भी तो थी ही, प्रभुकृपा से धन–वैभव की भी कमी नहीं थी, या थी भी तो सहृदयता वश अन्य खर्चों में कटौती भी करने को तैयार हो गए। इस पर दोनों के हृदय में साम्मनस्य पैदा हुआ। वे बच्चे के मन से अपने मन को एक करके उन्हीं के समान साईकिल की आवश्यकता अनुभव करने लगे वा उसकी इच्छा को अपनी इच्छा मानने लगे, तभी वे साईकिल लेने पहुँच गए। आफिस बहुत दूर है, पैदल जाया नहीं जा सकता, *थ्रीव्हीलर* वा *टैक्सी* में जाया जाए तो 15 दिवस में ही सारा वेतन समाप्त हो जाए। आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं है कि *स्कूटर* खरीदा जा सके। पत्नी ने पति के इस कष्ट को सहृदयतावश अनुभव किया और अपने पति की इस जरुरत को, आवश्यकता को तहेदिल से समझा, तब साम्मनस्य के कारण उसमें स्नेह–सहानुभूति और तदनुसार उपाय करने की वृत्ति–प्रवृत्ति पैदा हुई, तो तब उसे एक दिन यह सूझ आई कि मैं इन चूड़ियों को पहन कर क्या करुँगी जबकि पति को इतना कष्ट है ? सुहाग का चिह्न चूड़ियाँ हैं, तो वे तो काँच की भी पहनी जा सकती हैं, जो दो–चार रुपए की आ जाएँगीं। बस, फिर क्या था उन्हें बेच दिया और पति को स्कूटर ले दिया। पति ने कहा– "देवी, यह तूने क्या किया ?" पत्नी बोली– "पति देव! मेरा आभूषण तो आप हैं। मैं आप से अलंकृत हूँ, इन चूड़ियों से नहीं, हाँ, सुहाग का चिह्न हैं यदि चूड़ियाँ हैं तो काँच की चूड़ियाँ पहनकर भी किया गुज़ारा किया जा सकता है। अतः आप अनुभव न करें, वे तो मैं ले आई हूँ...।" पति ने पत्नी के इस दिव्य त्याग को देखा, तो उनका रोम–रोम खिल गया और उसने उसे हृदय से साधुवाद दिया। सचमुच जहाँ सहृदयता होती है, वहाँ साम्मनस्य होता है, और जहाँ साम्मनस्य होता है वहाँ घर–परिवार के सब सदस्य किसी वस्तु के अभाव में भी दिव्य त्याग और तपोमयी भावनाओं एवं व्यवहारों के कारण ही सदा बड़े सुखी और प्रसन्न रहते हैं।

हम नारी को देखते हैं जब वह पतिलोक में आती है, तो उसके हृदय में पति के लिए सहृदयता होती है। सहृदयतावश वह ज्यों–ज्यों पति की भावनाओं को, इच्छाओं को, रुचियों को जानती जाती है, त्यों–त्यों ही वह उसके समान मन वाली होकर वैसा ही वह सोचने लगती है, वैसा ही वह करने लगती है। पति को खीर अच्छी लगती है, या राजमा–चावल बहुत अच्छे लगते हैं या गाजर–आलू की सब्जी, तो फिर वही चीज़ें वह बनाना चाहती है, वैसा ही वह सोचने लगती है और वैसा ही वह करने लगती है। उसे स्वयं जो कुछ अच्छा लगता है वह सब कुछ तो वह फिर बना ही नहीं पाती क्योंकि वह अपनी इच्छाओं और अपनी रुचियों से तो फिर बहुत ऊपर उठ जाती है। नारी के इस त्याग–तप से पति बहुत प्रसन्न रहता है और अपने पति को प्रसन्न देखकर फिर वह नारी भी दिल से फूली नहीं समाती। पति घर पर आते हुए सहृदयतावश सोचता है कि– "मेरी पत्नी को क्या अच्छा लगता है या फिर उसके स्वास्थ्य के लिए अनुकूल क्या है ? तो फिर वह साम्मनस्य के कारण, वैसा ही सोचता– विचारता हुआ वही वस्तु घर ले आता है।" इससे नारी भी बड़ी प्रसन्न रहती है और प्रसन्न नारी, प्रसन्न पत्नी को देखकर फिर पति भी फूला नहीं समाता। आगे चलकर जब बच्चा उत्पन्न होता है तो फिर नारी और नर, पति और पत्नी सहृदयतावश सोचते हैं कि बच्चे को क्या अच्छा लगता है और उसको क्या अनुकूल है ? कभी–कभार नारी पूछती है पति से कि–"पति देव! आज क्या बनाऊँ ?" तो पति झट बोल देता है–"देवी! जो बच्चों को अच्छा लगे और जो उन्हें अनुकूल हो, तू वही बना।" तब पति–पत्नी साम्मनस्य के कारण बच्चों के मन के अनुकूल ही सोचने–विचारने और करने लगते हैं। पति तब प्रायः वह लाता है जो बच्चों को प्रिय और अनुकूल होता है, नारी भी तब प्रायः वही सब कुछ बनाती है, जो बच्चों को प्रिय–रुचिकर और अनुकूल हो। यह सब देख कर बच्चे भी तब बड़े ही प्रसन्न रहते हैं, बड़े ही खुश रहते हैं और खुश– प्रसन्न बच्चों को देखकर तब माँ–बाप भी फूले नहीं समाते। ऐसी स्थिति में बच्चों का प्रेम, आदर और मान–सम्मान का भाव आदि अपने माँ–बाप में बहुत बढ़ता है और माँ–बाप का लाड़–प्यार आदि अपने बच्चों में प्रगाढ़ होता जाता है। इससे तब घर–परिवार सब सदा हरा–भरा बना रहता है।

एक बार बस में एक व्यक्ति ने 4 सन्तरे लिया। एक बेटी, एक बेटे और एक पत्नी को देकर एक स्वयं ले लिए। तीनों ने सन्तरा खा लिया तब बेटी माँ से बोली– "माँ जी! आपका बस में जी खराब होता है, इसलिए मैंने अपना सन्तरा रख लिया है। पता नहीं आगे मिले न मिले, तो आप मुझ से ले–लेना।" माँ ने बेटी की अपने प्रति उस दिव्य भावना को जब जाना, तो वह बड़ी ही प्रसन्न हुई और बोली कि–"न जाने मैं इस बेटी पर क्या वार दूँ। इस 8–9 वर्ष में इसकी बड़ी ही सुन्दर भावनाएँ हैं।"

घर में अतिथि आया, अभ्यागत आया, तो मानो भगवान् आया। अब सहृदयतावशात् परिवार के सदस्यों में साम्मनस्य उत्पन्न हुआ इसलिए उसकी गर्मी वा सर्दी को परिवार वालों ने अपनी ही गर्मी–सर्दी समझा। तभी उन्होंने उसे अपनी ही सर्दी–गर्मी समझ कर उसे दूर करने के लिए उसे गर्म–ठण्डा जल दिया। फिर उसकी भूख–प्यास को सहृदयतावश अपनी ही भूख–प्यास मानकर, समझकर, अनुभव करके उन्होंने उस भूख–प्यास को मिटाने के लिए उसे कुछ खाने–पीने को दिया। फिर उसकी थकान को सहृदयतावश अपनी ही थकान मानकर उसको विश्राम के लिए अच्छे से अच्छा स्थान दिया, अच्छे से अच्छे वस्त्राच्छादन दिए।

सच कहा जाए तो जिस घर में, जिस समाज में सहृदयता होती है, वहाँ साम्मनस्कता भी जरुर होती है और जहाँ ये दोनों विद्यमान रहती हैं, वहाँ फिर कोई वैर–विरोध नहीं होता, वरन् वहाँ तो एक व्यक्ति किसी चीज़ वा कार्य का प्रस्ताव रखता है तो दूसरे सब सहृदयतावशात् उस पर फूल चढ़ाते हैं अर्थात् सब उसका अनुमोदन करते हैं और फिर सभी एक मन से उस कार्य को सम्पन्न करने में लग जाते हैं और जब तक फिर उस कार्य को सिद्ध नहीं कर लेते तब तक सब एक मन होकर उस में जुटे रहते हैं। जब सब प्रेमपूर्वक लग जाते हैं, तब उस कार्य की सिद्धि भी सहज हो ही जाती है। कार्य सिद्ध होने पर फिर सब फूले नहीं समाते। वेद भगवान् यही चाहता है कि हर घर–परिवार वा समाज में ऐसी ही सहृदयता और ऐसा ही प्रेम बना रहे। हमें चाहिए कि मन–वचन और कर्म से हम सब इसके अनुकूल आचरण करते हुए अपने घर–परिवार एवं समाज को सुखमय, स्वर्गमय, आनन्दमय बनाएँ।

लेखक की पुस्तक
'वैदिक रश्मियाँ' से साभार

आर्यसमाज के 150 वर्ष पूरे होने पर

आर्यसमाज का विस्तार

● इन्द्र विद्यावाचस्पति

बम्बई, संयुक्तप्रान्त और पंजाब में आर्यसमाजों की स्थापना हो चुकी थी। आर्यसमाज के सभासद् हज़ारों की संख्या तक पहुँच चुके थे। जितने सभासद् थे, ऋषि दयानन्द के भक्त और अनुयायी उनसे कहीं अधिक थे। बहुत से लोग समझते थे– "यह सुधारक कहता तो ठीक है परन्तु यह संन्यासी है, निर्भय है, निश्शंक है, हम इतना त्याग नहीं कर सकते, इस कारण सच्ची बात भी मुँह पर नहीं ला सकते।" **{काशी शास्त्रार्थ वाला मूर्धन्य विद्वान् पं. बाल शास्त्री जैसा विरोधी भी यही कहता रहा। 'जिज्ञासु'}** ऐसे लोग आर्यसमाजी न हों परन्तु वे ऋषि के भक्त थे और उन्हें आर्यजाति का रक्षक समझते थे।

इस समय उत्तरीय भारत में स्वामी जी की अपूर्व स्थिति थी। वे आर्य जाति (हिन्दू जाति) के नेता, सुधारक और रक्षक माने जाते थे। आर्य जाति का प्राण गौ जाति है। इस समय गो–रक्षा के लिए ऋषि दयानन्द से बढ़कर ऊँची आवाज़ उठाने वाला कोई नहीं था। ऋषि ने ***'गोकरुणानिधि'*** लिखकर आर्य जाति की आँखें खोलने का यत्न किया था। वे जिस किसी भी सरकारी अफसर से मिले, उसके सम्मुख भारत में गो–हत्या बन्द कराने पर ज़ोर दिया। इतना ही नहीं, ऋषि के सिंहनाद से पहले ईसाई पादरी और मुसलमान मौलवी हिन्दू धर्म पर गहरी चोटें पहुँचा रहे थे। बेचारे हिन्दू पण्डित मूर्तियों और पुराणों के बोझ से दबे हुए होने के कारण अपनी पीठ भी सीधी न कर पाते थे, शत्रुओं के प्रहारों का क्या उत्तर देते? पादरी और मौलवी हिन्दू–क्षेत्रों में से खूब फसल काट रहे थे। ऋषि दयानन्द ने **जहाँ एक ओर आर्य जाति की पीठ पर से पत्थर और पोथी का बोझ उठा कर उसकी कमर सीधी कर दी,** वहाँ दूसरी ओर पादरियों और मौलवियों के तीरों को रोकने के लिए तर्क की ढाल खड़ी कर दी। ऋषि दयानन्द प्रतिभाशाली योद्धा थे। वे जानते थे कि जो आदमी गढ़ की ओट से दुश्मन के वार रोकता है, वह कभी दुश्मन को नहीं हरा सकता। दुश्मन की हिम्मत तोड़ने के लिए प्रत्याक्रमण भी चाहिए। पादरी और मौलवी पुराणों की कथाओं के हवाले दे–देकर आर्य जाति को निरुत्तर कर रहे थे। पुराणों का त्याग करके मूर्ति–पूजा को वेद–विरुद्ध बतला कर ऋषि ने वे छिद्र बन्द कर दिए, जहाँ से होकर दुश्मन के गोले आर्यपुरी में आ रहे थे। इस प्रकार घर की रक्षा का पूरा प्रबन्ध करके उस चतुर सेनानी ने अपने समालोचनारूपी अस्त्रों का मुँह बाहर की ओर मोड़ा और खुले मैदान में प्रत्याक्रमण आरम्भ कर दिए। ऋषि ने इंजील और कुरान हाथ में लिए और ईसाइयों और मुसलमानों को बताया कि तुम दूसरों की आंखों में तिनका ढूँढ़ने जा रहे हो, पहले अपनी आँख का शहतीर तो सँभाल लो। ईसाइयों और मुसलमानों को कोमल–प्रकृति हिन्दू से कभी प्रत्याक्रमण की आशा न थी। वे हिरण से यह आशंका न करते थे कि यह प्रत्याक्रमण करेगा। पादरी और मौलवी इस आकस्मिक प्रत्याक्रमण से झुँझला उठे। उधर आर्य जाति का हृदय फूल उठा–आर्य धर्म और आर्य सभ्यता की रक्षा भी हो सकती है, आर्य वीरों के इतिहास का भी कोई रखवाला है, आर्य जाति भी अपने मान को बचा सकती है– इन विचारों से, आर्य पुरुषों का साँस प्रसन्नताभरी आशा से भरपूर होकर ज़ोर से चलने लगा। जो आर्यजन ऋषि के कार्य के महत्व को समझ सकते थे, प्रसन्न थे कि परमात्मा ने आर्य जाति, आर्य धर्म और आर्य सभ्यता का रक्षक भेज दिया है। जो लोग ऋषि दयानन्द के खण्डनों को देखकर घबराते हैं, वे कभी उस स्थिति पर विचार नहीं करते, जिसमें ऋषि को काम करना पड़ा। स्थिति यह थी कि आर्य धर्म पर ईसाइयों और मुसलमानों के भयंकर आक्रमण हो रहे थे। उन्हें सफलता भी प्राप्त हो रही थी। सफलता के दो कारण थे–एक तो आर्यजति में आई हुई बुराइयों के कारण घर की निर्बलता और दूसरा विरोधियों का निष्ठुरता से सुधार और आक्रमण। ऋषि ने स्थिति को पहचान कर ठीक उपाय का प्रयोग किया। घर में इस आक्रमण करने वालों पर प्रत्याक्रमण। दो ही उपाय थे–वह स्थिति खतरे से भरी हुई थी, कारण **धर्म के सेनापति को युद्ध के नियमों के अनुसार कठोर साधनों का प्रयोग करना पड़ा। इसमें अनुचित क्या था?**

ऋषि दयानन्द उत्तर भारत में आर्य जाति के मान्य नेता थे। वे आर्यसमाजों के संस्थापक, गुरु और आचार्य थे। राजा और प्रजा की दृष्टि में वे भारत के अगुवाओं में से एक थे। यह स्थिति थी, जब वे पंजाब का दौरा लगा कर 1877 ई. के जुलाई मास में संयुक्तप्रान्त में वापिस गए। लगभग दो वर्ष तक बराबर संयुक्त प्रान्त में ही भ्रमण करते रहे। इस दौरे में प्रचार हुआ, नए आर्यसमाजों की स्थापना हुई और मौलवियों तथा पादरियों से शास्त्रार्थ हुए। 29 जुलाई 1878 ई को ऋषि दयानन्द रुड़की पहुँचे। वहाँ आपके व्याख्यानों में इंजीनियरिंग कॉलेज के विद्यार्थी और प्रोफेसर लोग आया करते थे। उन लोगों के प्रश्न प्रायः विज्ञान के विषय पर होते थे। स्वामी जी ने एक दिन इसी विषय पर बातचीत की कि प्राचीन भारत में विज्ञान था या नहीं? आपने वेदों तथा अन्य आर्ष–ग्रन्थों के प्रमाण देकर बताया कि प्रायः सभी मुख्य–मुख्य वैज्ञानिक सिद्धान्त, जिन पर नए विज्ञान को गर्व है, हमारे साहित्य में विद्यमान हैं। रुड़की से अलीगढ़ होते हुए स्वामी जी अगस्त मास के अन्त में मेरठ पहुँचे। मेरठ के उत्साही आर्यपुरुषों के धर्मबल से यह समाज शीघ्र ही युक्तप्रान्त के समाजों में मुख्य हो गया। मेरठ से स्वामी जी दिल्ली पहुँचे। यहाँ भी प्रचार के अनन्तर आर्यसमाज की स्थापना हुई।

दिल्ली से चलकर स्वामी जी ने छह–सात महीनों तक बड़ी भाग–दौड़ का दौरा लगाया। अजमेर, नसीराबाद, जयपुर, रिवाड़ी, दिल्ली, मेरठ, हरिद्वार, देहरादून आदि में प्रचार और सुधार का कार्य करते हुए आप आर्यपुरुषों को नया जीवन प्रदान करते रहे। मई (1878) मास में आप मुरादाबाद पहुँचे। मुरादाबाद में भी मुन्शी इन्द्रमणि आदि भक्तों के आग्रह से स्वामी जी ने देर तक निवास किया। आपके व्याख्यानों का विषय धार्मिक होता था परन्तु दृष्टि में धर्म इतना विस्तृत था कि मनुष्य जीवन से सम्बन्ध रखने वाला शायद ही कोई ऐसा विषय हो, जिस पर आप प्रकाश न डालते हों। परमात्मा और आत्मा पर गहरे विचार, साइंस की समस्याएँ, विवाह आदि सामाजिक प्रश्न, देश की दशा, राजा के कर्त्तव्य आदि सभी विषयों पर ऋषि दयानन्द अपनी सम्मति प्रकाशित किया करते थे। आपका 'धर्म' बड़ा विस्तृत था। वह केवल 'ईश्वर–पूजा' तक परिमित नहीं था और न ही डर या नीति की दृष्टि से आप उस के बीच में लकीरें डालने को तैयार हो जाते थे। धर्म एक था, व्यापी था, सर्वतोगामी था, मनुष्य के प्रत्येक व्यवहार में 'धर्म' को कुछ वक्तव्य है, यह ऋषि दयानन्द का सिद्धान्त था। आपके व्याख्यान और आपका प्रधान ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश, यह प्रमाणित करते हैं कि धर्म को आप एक मजहब, ईमान या रिलीजन नहीं समझते थे, **अपितु एक व्यापी नियम मानते थे।** यही कारण था कि ऋषि ने आर्यावर्त के प्राचीन गौरव पर बीसियों व्याख्यान दिए, अनेक प्रार्थनाओं में आर्य जाति के चक्रवर्ती राज्य की प्रार्थना की और राजा तथा प्रजा का धर्म बताते हुए भारत के विदेशी शासन की कमियाँ दिखाईं। मुरादाबाद में आपके व्याख्यानों के समय अन्य लोगों के साथ स्थानीय कलेक्टर मि. स्पेडिंग भी आया करते थे। उनके कहने पर एक दिन स्वामी जी ने राजधर्म पर व्याख्यान दिया। ऋषि ने वेदों तथा स्मृतियों के प्रमाणों से राजनीति के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हुए निर्भयता से राज्य के दोष दिखलाए। व्याख्यान घण्टों तक होता रहा। व्याख्यान के अन्त में कलेक्टर महाशय ने स्वामी जी का धन्यवाद किया और कहा– "यदि राजा और प्रजा में सम्बन्धों की ऐसी ही स्थिति रहती तो जो राजविप्लव हो चुका है, वह कभी न होता।"

मुरादाबाद से चलकर बदायूँ ठहरते हुए स्वामी जी बरेली पहुँचे और वहाँ के रईस ला. लक्ष्मीनारायण की कोठी पर आसन जमाया। व्याख्यान आरम्भ हो गए। स्वामी जी व्याख्यान के स्थान पर ठीक समय से पूर्व ही पहुँच जाते थे और नियत समय पर व्याख्यान शुरू कर देते थे। व्याख्यान का स्थान उतारे से दूर था, इस कारण लाला लक्ष्मीनारायण की गाड़ी समय पर आ जाती थी और मंडप तक स्वामी जी को पहुँचा जाती थी। एक दिन स्वामी जी व्याख्यान मण्डप में नियत समय से पौन घण्टा पीछे पहुँचे। समय का व्यतिक्रम स्वामी जी के स्वभाव में नहीं था। उन्हें विलम्ब से पहुँचने का बड़ा दुःख हुआ। व्याख्यान के प्रारम्भ में ही आपने कहा–

> "मैं तो समय पर समुद्यत था, परन्तु गाड़ी नहीं पहुँच सकी। अन्त में पैदल चल कर आ रहा था कि मार्ग में गाड़ी मिली। समय के व्यतिक्रम में मेरा दोष नहीं है किन्तु बच्चों के बच्चों का है। बाल विवाह की सन्तानों में ऐसी निर्बलता का होना आश्चर्य नहीं।" **{ऋषि इस कथन को प्रायः सर्वत्र दोहरा कर बाल विवाह पर करारी चोट करते रहे। यह वचन आपकी लोक साहित्य को अनूठी देन थी। 'जिज्ञासु'}**

क्रमशः

'आर्यसमाज का इतिहास'
प्रथम भाग से साभार

बेचारा गूँगा गुलाब

● डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा

ज्यों ही अपने घर से बाहर निकला, मुझे अपने आँगन में एक मुस्कराता गुलाब निमंत्रण देता हुआ सा प्रतीत हुआ। मैं उसके निकट पहुँचा और पूछा।

"कहो, कैसे हो गुलाब भाई?" वह चुप रहा पर मुस्कराता रहा। मैंने फिर पूछा, "क्या तुमने मुझे निमंत्रण दिया?"

वह फिर भी चुप रहा। मैंने रुष्ट होकर पूछा –

"क्या तुम गूँगे हो?" फिर भी उसने जबाब नहीं दिया।

इसके बाद उत्तेजित होकर अपने घर आ गया, सो गया और सपनों की दुनिया में खो गया। अचानक सपनों में मुझे वहीं गुलाब दृष्टिगत हुआ, मुझे देखकर मुस्कराया, मुझे लगा कि वह मुझ से बातें करना चाहता है। मैंने कहा, "तुमसे क्या बात करनी, तुम तो गूँगे हो।"

तब वह मुस्कराता हुआ मनुष्य वाणी में बोला,

तब गूँगा था, अब नहीं?

"अब ऐसा क्या चमत्कार हो गया?" मैं रुष्ट होकर बोला।

"पहले आपने एक साधारण व्यक्ति के रूप में पूछा था। अब आप स्वप्न द्रष्टा हैं, कवि हैं, आपके पास कल्पना के पंख हैं, आप समस्त भूमंडल में कहीं भी उड़ सकते हैं।"

"आपने मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया?"

"आप ठहरे स्वप्न द्रष्टा कवि, जड़ को चेतन, चेतन को जड़–कुछ भी बना सकते हैं। आप चेतन कवि हैं तो मैं अचेतन गुलाब हूँ, आप अपनी कल्पना शक्ति से मेरा मानवी करण कर सकते हैं, मुझ से संवाद कर सकते हैं।"

"क्या आप अपने तथ्य की पुष्टि के लिए कोई प्रमाण दे सकते हैं? मैंने गुलाब से प्रश्न किया।

"मुझे संस्कृत का एक श्लोक याद है–

अपारे काव्य संसारे कविरेको प्रजापतिः।
यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिकल्पते।।

अर्थात् इस काव्य–संसार में कवि एक प्रजापति है और वह अपनी कल्पना के अनुसार काव्य–सृष्टि का निर्माण कर सकता है।

अतः आपकी कृपा तथा कल्पनाशीलता से मुझे कुछ समय के लिए मनुष्य की वाणी वरदान स्वरूप उपलब्ध हुई है अतः जब तक मेरे पास मनुष्य की वाणी उपलब्ध है तब तक आप मुझ से प्रश्न पूछ सकते हैं।" गुलाब ने मनुष्य वाणी में कहा।

"गुलाब भाई, मेरा प्रश्न है, आप सुन्दर हैं, सुगन्धित हैं पर आपके पास वाणी क्यों नहीं?"

"आपने यह प्रश्न विधाता से किया होता तो अच्छा होता। फिर भी मैं सोचता दूँ कि विधाता ने अच्छा ही किया कि मुझे वाणी नहीं दी। वाणी के प्रयोग से मेरी सुन्दरता और सुगन्ध दोनों ही विकृत हो जाते। मेरी अनछुई सुन्दरता और सुगन्ध मुझे पवित्र बनाए हुए हैं।"

"यदि आपके पास मानवी वाणी होती तो यह तो सोने पे सुहागे के समान होता।" मैंने अपना तर्क प्रस्तुत किया।

"फिर तो आपने मनुष्य वाणी के दोष नहीं देखे। यह वाणी लड़ाई–झगड़ों, कलहों और भयंकर युद्धों की मूल कारण बन जाती है। महाभारत का युद्ध इसका साक्षात् सबल प्रमाण है। मनुष्य छोटी–छोटी बातों के लिए अपनी वाणी को झूठ, क्रोध और वैमनस्य की दुर्गन्धमयी कड़ाही में डुबो देता है।"

"पुष्प के रूप में आपका मुस्कराता चेहरा, तन–मन को मुग्ध करने वाली मोहक सुगन्ध, यह सब तो ठीक है पर बदन में काँटे, ये बात मेरी समझ में नहीं आती।

"आप इसका यह अभिप्राय लेते होंगे कि ये काँटे मेरी सुरक्षा के साधन हैं पर मैं समझता हूँ कि मेरे अन्तस् की पीड़ा रिस–रिस कर काँटों के रूप में उभर आई है। ये काँटे नहीं, मेरी पीड़ा के जमे हुए धब्बे हैं।"

"क्या है आपकी पीड़ा?"

"रात–दिन उन्मुक्त गगन के नीचे निर्वस्त्र खड़े रहना, आँधियों और तूफानों को झेलना, पानी न मिले तो सूख जाना, पानी ज्यादा मिले तो सड़ जाना, प्रचण्ड गर्मी को आँसू बहाते हुए झेल जाना, क्या यह कम पीड़ा है?"

"इतने कष्ट झेलने पर भी आप पनप जाते हैं, जन्म ले लेते हैं, यह सब कैसे हो जाता है?"

दृढ़ संकल्प के कारण। माली कलम के रूप में मेरे मुँह को मिट्टी में रोप देता है। मैं तड़पता हूँ, छटपटाता हूँ साँस लेना मुश्किल, हाथ–पैर बिना, आधा–अधूरा, फिर मेरा हृदय फट जाता है और कोंपल के रूप में नव शिशु का जन्म होता है।

"यह तो बहुत बड़ी यातना है, तपस्या है।"

"यह तो तपस्या का शुभारम्भ है। मेरी कोंपल को सूरज झुलसा देना चाहता है, आंधी उसे कुचल देना चाहती है, मेरे अस्तित्व को मिटा देना चाहती है, फिर भी मैं जिन्दा रहता हूँ–संकल्प–बल के आधार पर।"

"फिर भी आपके जीवन में सौदर्य है, सुगन्ध है, इसका कारण?

"सत्तोगुणी साधना और अटूट ईश्वरीय आस्था के कारण। मेरे पास न तो कर्मेन्द्रियाँ हैं और न ज्ञानेन्द्रियाँ। जब इन्द्रियाँ ही नहीं तो रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द विषय कैसे हो सकते हैं। ये विषय ही इन्द्रियों को मलिन करते हैं। जब इन्द्रियाँ ही नहीं तो विषय कैसे हो सकते हैं ? यदि विषय नहीं होंगे तो सौन्दर्य और सुगन्ध को आने से कौन रोक सकता है ?

"गुनगुनाते हुए भौंरे आपके पास से परागकण चुरा कर ले जाते हैं पर आप कुछ नहीं कहते। ऐसा क्यों ?"

"मैं एकान्त सेवी तपस्वी हूँ। मेरा समस्त जीवन समाज के प्रति समर्पित है। यदि मेरे पराग कणों से उनकी बुभुक्षा शान्त हो सकती है तो यह तो मेरे लिए सौभाग्य की बात है। आपने सुना ही होगा, **'परोपकाराय सत्तां विभूतयः'** अर्थात् सज्जनों की सम्पत्तियाँ परोपकार के लिए ही होती हैं।"

"पर कुछ लोग आपकी उदार प्रवृत्ति का अनुचित लाभ उठाकर आपको तोड़कर फूलों की माला बना देते हैं और आप कुछ नहीं कहते, ऐसा क्यों?"

"मैं' तो मर कर भी उनके कंठ की शोभा बनता हूँ। हर व्यक्ति कर्म करने में स्वतन्त्र है और फल भोगने में परतंत्र। मैं पर्यावरण में सुगन्ध का प्रसार करना चाहता हूँ परन्तु कुछ लोग पर्यावरण को दूषित और दुर्गन्धमय बनाने का प्रयास करते हैं। यह सोच बदलनी चाहिए।"

"क्या आप अपने तपस्वी रूप से संतुष्ट हैं?"

"सन्तुष्ट ही नहीं, परम सन्तुष्ट। भले ही आप मुझे जड़ कहें पर मैं जड़ होने पर भी जड़ता का विरोधी हूँ। ये जड़ता विरोधी भी मानवीय मूल्यों का हनन करते हैं।"

गुलाब कुछ कहना ही चाहता था कि अचानक किसी व्यक्ति ने मुझे झकझोर दिया, मेरा सपना टूट गया। कल्पना का चार्जर भी अचानक समाप्त हो गया। परिणाम स्वरूप बेचारे गुलाब की वाणी मौन हो गई और फिर वह गूँगा हो गया। पर गूँगा होने से पहले वह इस गूँगे समाज को सुगन्ध और सौन्दर्य के प्रसार का अमर संदेश अवश्य दे गया।

230, आर्य वानप्रस्थ आश्रम
ज्वालापुर (हरिद्वार)
मो. 9639149994

☞ पृष्ठ 05 का शेष

हमारा बनाने वाला

बढ़ई भी वृक्ष से मेज न बना सकता। चूने को हल्दी में मिलाने से रोरी बनती है। परन्तु चूने का यह स्वभाव नहीं कि वह स्वयं जाकर हल्दी से मिल सके। इनको परस्पर इकट्ठा करने की जरुरत होती है। संसार में देखा जाता है कि कभी पानी ऐसी वस्तुओं के संसर्ग में आ जाता है कि उसके दोनों भाग अर्थात् ऑक्सीजन (Oxygen) और हाइड्रोजन (Hydrogen) अलग–अलग हो जाते हैं और कभी भिन्न–भिन्न पदार्थ आपस में मिल जाते हैं जिनका हाइड्रोजन और ऑक्सीजन मिलकर पानी बन जाता है। इन पदार्थों का परस्पर संसर्ग स्वयं नहीं होता, इसके लिए कोई निमित्त चाहिए। कभी इस निमित्त को हम देख सकते हैं जैसे प्रयोगशाला (laboratory) में प्रयोग करने वाला Experimenter और कभी नहीं देख सकते। यदि प्रयोगशाला में रखी हुई वस्तुएँ स्वयं स्वभाव से नहीं मिल जाती न अलग हो जाती हैं तो सृष्टि के अन्य स्थानों में वे कैसे स्वयं मिल गई होंगी। फिर देखना चाहिए कि स्वभाव क्या है ? यदि कहो कि परमाणुओं में रहनेवाली उस अदृष्ट शक्ति को स्वभाव कहते हैं जिनसे प्रेरित होकर वे परमाणु आपस में मिलते हैं तो ऐसी शक्ति के अस्तित्व की सिद्धि नहीं होती क्योंकि जो परमाणु एक स्थान पर मिलते हैं वे दूसरे स्थान पर अलग भी होते हैं, यदि मिलना स्वभाव है तो वियोग नहीं होना चाहिए था, यदि वियोग होना स्वभाव होता तो मिलना नहीं चाहिए था। परमाणुओं में न तो परस्पर मिलने का स्वभाव है न अलग होने का। उनमें ऐसे गुण तो अवश्य हैं कि यदि कोई उनको मिला दे तो एक विशेष वस्तु बन जाए जैसे चूना और हल्दी ही के मिलने से रोरी बनती है, चूने में दही मिलाने से रोरी न बनेगी परन्तु न तो चूना हल्दी से स्वयं मिलेगा न हल्दी चूने से। इनका मिलाने वाला कोई दूसरा ही होगा। **क्रमशः**

'लेखक द्वारा लिखित ट्रैक्ट संख्या 34'
से साभार

महामहोपाध्याय पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक जी की महर्षि दयानन्द जी के प्रति निष्ठा

● डॉ. भवानीलाल भारतीय

ऋषि दयानन्द विषयक पण्डित {युधिष्ठिर मीमांसक} जी के विचारों को लेकर अनेक बार भ्रान्तियाँ फैलाने का प्रयास भी हुआ। कई विद्वान् आर्यसमाजियों की भावुकता तथा ऋषि– भक्ति का अनुचित लाभ उठाते हुए अपने भाषणों और लेखों में कदम–कदम पर घोषित करते हैं कि वे ऋषि के एक–एक वाक्य, एक–एक शब्द को प्रमाण मानते हैं। वे ऋषि के लेख में कहीं कोई भूल या अशुद्धि नहीं मानते तथा ये ही विद्वान् मीमांसक जी की यह कहकर आलोचना करते थे कि वे ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों में सैंकड़ों अशुद्धियाँ मानते हैं। तथ्य कुछ अन्य ही है। इस प्रसङ्ग में मुझे राहुल सांकृत्यायन लिखित पण्डित भगवद्दत्त विषयक एक संस्मरण याद आता है। जिस समय राहुलजी (उस समय वे बाबा रामोदारदास के नाम से जाने जाते थे) लाहौर में कट्टर आर्यसमाजी विचारधारा को अपनाए हुए थे, उस समय उन्होंने किसी समय पण्डित भगवद्दत्त जी से कहा था कि वे (राहुल) ऋषि दयानन्द के एक– एक वाक्य, एक–एक शब्द को अत्यन्त प्रामाणिक और सत्य मानते हैं। उस समय ऋषि के विचारों के प्रति परम आस्थावान् पण्डित भगवद्दत्त जी ने उन्हें चेतावनी भरे स्वर में कहा था–"जल्दबाजी में ऐसा नहीं कहना चाहिए। क्या आपने ऋषि के एक–एक कथन या वाक्य की परीक्षा कर उसके सत्य होने का निश्चय कर लिया है।" पण्डित भगवद्दत्त जी का यह चेतावनी का वाक्य उन सभी भावुक भक्तों पर भी लागू होता है जो मात्र भावावेश में आकर इस प्रकार की बातें कहते हैं तथा प्रचारित करते हैं।

पण्डित मीमांसक जी की ऋषि दयानन्द के विचारों और कार्यों के प्रति परा कोटि की श्रद्धा थी, किन्तु उनकी यह आस्था कहने या प्रचार करने के लिए नहीं थी। उन्होंने ऋषि दयानन्द के वेदार्थ तथा उनके अन्य शास्त्रीय विचारों की पुष्टि में जो कुछ कहा या लिखा वह अपने आप में बेमिसाल है। यों आर्यसमाज में ऐसे पण्डितों का ही बाहुल्य है जो "गृहेशूर" की कहावत को चरितार्थ करते हुए अपने ही मंचों पर शेर की तरह दहाड़ते हैं किन्तु ऐसे विद्वान् तो एक हाथ की अंगुलियों की संख्या जितने भी नहीं हैं जिन्होंने अपनी विद्वत्ता और योग्यता की छाप अखिल भारतीय विद्वत् समुदाय पर डाली हो। अब तो शास्त्रार्थ का युग भी नहीं रहा। जब आर्यसमाज के विद्वान् अपने शास्त्र ज्ञान और वाक्–कौशल के द्वारा प्रतिद्वन्द्वी को शास्त्रार्थ– समर में पराभूत कर देते थे। काशी के संस्कृत विद्वान्– मण्डल में पण्डित ब्रह्मदत्त जिज्ञासु तथा उनके अन्तेवासी पण्डित मीमांसक जी को जो सम्मान और प्रतिष्ठा मिली वैसी और कितनों को मिली है। दर्शनों पर अद्वितीय अधिकार रखने वाले पण्डित उदयवीरजी जैसे कितने और विद्वान् आर्यसमाज में हैं जिनकी शोधपूर्ण कृतियाँ समस्त दार्शनिक समाज में आदर की दृष्टि से देखी जाती हैं। इसी प्रकार संस्कृत व्याकरण शास्त्र का प्रामाणिक इतिहास लिखना और शास्त्रों का चतुरस्र ज्ञान प्राप्त कर अपने सम्पूर्ण जीवन को विद्या – व्यासङ्ग में लगा देना, मीमांसक जी से भिन्न अन्य किसके सामर्थ्य की बात थी। किसी महाविद्यालय या विश्वविद्यालय की कोई उपाधि न लेकर भी संस्कृत विद्वानों में मान्यता प्राप्त करना कोई साधारण बात नहीं है।

हम मीमांसक जी की दयानन्द के प्रति निष्ठा की बात कर रहे थे। उन्होंने स्वामी जी के विभिन्न ग्रन्थों के सम्पादन, संशोधन तथा उन पर टिप्पणी लेखन के द्वारा महर्षि के अगाध पाण्डित्य, उनकी आर्ष दृष्टि तथा क्रान्तिकारी विचारधारा को ही पुष्ट किया है। ऋषि दयानन्द विषयक उनका निजी मन्तव्य उनकी अन्तिम कृति "**मेरी दृष्टि में स्वामी दयानन्द और उनके कार्य**" में प्रकाशित हुआ। इसकी एक प्रति मुझको भेज कर उन्होंने मुझसे अनुरोध किया था कि मैं इसे अवधानपूर्वक पढ़ूँ और अपनी सम्मति दूँ। मैंने उनके इस ग्रन्थ को पढ़ा तो मुझे लगा कि दयानन्द की वैचारिक और लेखकीय दृष्टि की उन्हें कितनी गहरी पकड़ थी। ऋषि दयानन्द के वेदभाष्य तथा अन्य ग्रन्थों में जो यत्र तत्र भाषागत या तथ्यगत स्खलन दिखाई पड़ते हैं उनके लिए वे लिपिकार का दोष तो मानते हैं, किन्तु इसे वे स्वामीजी की गलती नहीं मानते। जब परोपकारिणी सभा ने सत्यार्थप्रकाश का 37वाँ संस्करण प्रकाशित किया और उसमें उन्होंने अनेक असङ्गतियाँ और विसंवादपूर्ण स्थितियाँ देखीं तो इसकी ओर आर्यजगत् का ध्यान आकृष्ट करने में उन्होंने थोड़ा भी विलम्ब नहीं किया। चाहे इसके लिए उन्हें अनेक दिशाओं से आलोचनाजन्य प्रकोप का भी शिकार होना पड़े किन्तु अपने मन्तव्य से वे विचलित नहीं हुए। परिणामतः आर्यसमाज के अनेक विचारशील विद्वानों को भी अपने विचारों को स्पष्ट रूप से कहने का साहस हुआ।

{स्रोतः वेदवाणी मासिक पत्रिका का नवीनतम (नवम्बर 2021 का) अंक, पृष्ठ 106 107, प्रस्तुतकर्ता : भावेश मेरजा}

अद्भुत प्रतिभा के धनी-स्वामी दयानंद सरस्वती

● अनुराधा शर्मा और किरण यादव

आर्य समाज एक हिंदू सुधार आंदोलन है। इसकी स्थापना स्वामी दयानंद सरस्वती ने 10 अप्रैल, 1875 में बम्बई में मथुरा के स्वामी विरजानंद की प्रेरणा से की थी। यह आंदोलन पाश्चात्य प्रभावों की प्रतिक्रिया स्वरूप हिंदू धर्म में सुधार के लिए आरंभ हुआ था। स्वामी दयानंद ने शिक्षा को ज्ञान प्राप्त करने के साधन के रूप में देखा, जिसे उन्होंने परम वास्तविकता की समझ को मानव जीवन के उद्देश्यों के रूप में परिभाषित किया। उनका मानना था कि शिक्षा केवल ज्ञान अर्जित करने तक ही सीमित नहीं होनी चाहिए बल्कि इसका उद्देश्य आध्यात्मिक, दार्शनिक, अन्तर्दृष्टि को बढ़ावा देना भी होना चाहिए। स्वामी जी की इच्छा थी कि आधुनिक भारत में पाश्चात्य शिक्षा और वैदिक शिक्षा का मिला जुला स्वरूप प्रदान किया जाए। दयानंद सरस्वती का उद्देश्य वैदिक विद्या और संस्कृत के विद्वान् के रूप में भारतीयों को निरर्थक कर्म–कांडों से दूर करना और उन्हें वैदिक मान्यताओं की ओर निर्देशित करना था। स्वामी दयानंद धार्मिक प्रवृत्ति से लिप्त थे। वे आधुनिक भारत के चिंतक थे। उन्होंने लोगों को अपनी प्रसिद्ध रचना" सत्यार्थ प्रकाश' के माध्यम से सत्य के मार्ग की ओर अग्रसर किया। आर्यसमाज की स्थापना का मुख्य उद्देश्य वैदिक धर्म को पुनः स्थापित कर जाति बंधन को तोड़कर सम्पूर्ण हिंदू समाज को एक सूत्र में बाँधना था। स्वामी जी ने धर्म परिवर्तन कर चुके लोगों को 'शुद्धि आंदोलन' के माध्यम से पुनः हिंदू बनने के लिए प्रेरित किया। स्वामी जी वस्तु जगत् और आध्यात्मिक जगत् दोनों ही प्रकार के ज्ञान को महत्व देते थे और हर ज्ञान को तर्क की कसौटी पर कसना दयानंद जी की विशेषता थी। 1892–93 में आर्य समाज दो भागों में बँट गया। फूट के बाद एक दल ने पाश्चात्य शिक्षा का समर्थन किया, जिसके प्रमुख लाला लाजपतराय और लाला हंसराज थे। उन्होंने 'दयानंद एंग्लो वैदिक' कॉलेज की स्थापना की। इसी प्रकार दूसरे दल ने पाश्चात्य शिक्षा का विरोध किया, जिसके परिणाम स्वरूप विरोधी दल के नेता स्वामी श्रद्धानंद जी ने 1902 में हरिद्वार में 'गुरुकुल कांगड़ी' की स्थापना की। इस संस्था में वैदिक शिक्षा प्राचीन पद्धति से दी जाती थी। स्वामी दयानंद जी ने लोगों को वेदों की ओर लौटो' का नारा दिया और उन्होंने आजीवन वेदों का प्रचार–प्रसार किया। उन्होंने **'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'** के संदेश के माध्यम से सम्पूर्ण विश्व को आर्य बनाने की प्रेरणा दी। स्वामी दयानंद की 200वीं जन्म जयन्ती का ये पावन कार्यक्रम 2 साल तक चलने वाला है। महर्षि दयानंद ने आर्य समाज के 10 नियमों के माध्यम से मानव जाति को जीवन की वास्तविकता से परिचित करवाया। उनका जीवन सम्पूर्ण मानव समाज के समक्ष आदर्श स्थापित करता है। हम उनके जन्म दिवस पर उन्हें श्रद्धा पूर्वक शत–शत नमन करते हैं। नेताजी सुभाषचंद्र बोस के कथनानुसार–

> "आधुनिक भारत के आद्य निर्माता तो दयानंद ही थे, साथ ही उन महापुरुषों में से थे जिन्होंने स्वराज्य की प्रथम घोषणा करते हुए आधुनिक भारत का निर्माण किया। हिंदू समाज का उद्धार करने में आर्यसमाज का बहुत बड़ा हाथ है।"

डी.ए.वी. पुलिस पब्लिक स्कूल, रेवाड़ी (हरियाणा)

पत्र/कविता

सागरमल गोपा

सागरमल गोपा का जन्म तीन, नवंबर, 1900 को राजस्थान के जैसलमेर के एक संपन्न ब्राह्मण परिवार में हुआ था। सागरमल के पिता अखयराज गोपा महाराजा के दरबार में उच्च पद पर थे। उस वक्त जैसलमेर रियासत में महाराजा जवाहरसिंह का राज था। वह अंग्रेज़ों के पिट्ठू थे और अपनी जनता पर भीषण अत्याचार करते थे। जैसलमेर रियासत में पत्र–पत्रिकाएँ पढ़ने और छापने तक पर प्रतिबन्ध था क्योंकि उससे विद्रोह फैलने की आशंका थी। महाराजा के कारिंदे प्रजा पर सख्त नज़र रखते थे और बेवज़ह उन पर ज़ुल्म किया करते थे। लोग उस अत्याचार से त्रस्त थे, लेकिन वे डर के मारे मुँह नहीं खोलते थे। अपने आसपास महाराजा और अंग्रेज़ों के ज़ुल्मों के निशान देखकर बड़े हो रहे सागरमल दुखी और क्षुब्ध हो रहे थे।

वे समझ गए थे कि आवाज़ उठाए बिना महाराजा और अंग्रेज़ों के शोषण से मुक्ति संभव नहीं है। वर्ष 1921 में वे महात्मा गांधी के असहयोग आंदोलन का हिस्सा बने। लोगों में जागरूकता का प्रसार करने के लिए उन्होंने पन्द्रह साल की उम्र में एक पुस्तकालय की स्थापना की थी। शोषण और अत्याचार के घुटन भरे माहौल में उन्होंने महाराजा के विरुद्ध कविता लिखी थी–

क्रान्ति की आँधी न रूकेगी मुद्गर से।
एक न एक दिन तुम शासन गँवाओगे।
नौ रत्न के पंजों से बचो भूप जवाहर तुम।
जैसाण के किले पर तिरंगा पाओगे।

कविता के अलावा उन्होंने **'जैसलमेर राज्य का गुंडाराज'** और **'आज़ादी के दीवाने'** जैसे किताबें भी लिखी थीं। अपने क्रान्तिकारी भाषणों और लेखों से सागरमल ने जैसलमेर के महाराज जवाहर सिंह को नाराज़ कर दिया था।

नतीज़तन उनके पिता को पद से हटा दिया गया और परिवार नागपुर चला गया। वहाँ भी सागरमल आजादी की लड़ाई में भाग लेते रहे। विभिन्न विद्राहों में उनकी भागीदारी के कारण जैसलमेर और हैदराबाद में उनके प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगा हुआ था। लेकिन वर्ष 1941 में पिता के देहान्त के बाद उन्हें पिंडदान के लिए जैसलमेर लौटना पड़ा, जहाँ उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया।

उन्हें छह साल की कठोर कारावास की सज़ा सुनाई गई। सागरमल गोपा ने आज़ादी की जो अलख जगाई थी, यह उसी का नतीज़ा था कि वर्ष 1945 में जैसलमेर में प्रजामंडल की स्थापना हुई। लेकिन जेल में क्रूर थानेदार गुमानसिंह सागरमल गोपा से माफी मँगवाने के लिए रोज़ उनके साथ क्रूरता बरतता था। प्रजामंडल के नेता जयनारायण व्यास को जब इसकी खबर मिली, तो उन्होंने इसकी जानकारी लेनी चाही। छह अप्रैल, 1946 को उनके जैसलमेर जाने का कार्यक्रम बना, ताकि वह सच्चाई जान सकें लेकिन उससे पहले ही तीन अप्रैल को यह मनहूस खबर आई कि सागरमल गोपा ने जेल में अत्महत्या कर ली है जबकि वह आत्महत्या नही थी, गर्म तेल डालकर उन्हें जलाने की कोशिश की गई।

उस अवस्था में भी किसी को उनसे मिलने नही दिया गया और चार अप्रैल को उन्होंने दम तोड़ दिया। सागरमल गोपा की मौत की जाँच के लिए गोपाल स्वरूप पाठक कमेटी गठित हुई, लेकिन उसने हत्या को आत्महत्या साबित कर दिया। आखिरकार 30 मार्च 1949 को जैसलमेर आज़ाद भारत का हिस्सा बन गया। सागरमल गोपा की शहादत को जनमानस की स्मृतियों में जिंदा रखने के लिए भारतीय डाक विभाग ने उन पर एक डाक टिकट जारी किया गया था। इंदिरा गांधी नहर की एक शाखा भी उनके नाम पर है।

स्वामी गुरुकुलानन्द 'कच्चाहारी'
पिथौरागढ़ (उत्तराखण्ड)
'इतिहास के बिखरे पन्ने' से साभार

****

माटी

माटी, को देखो नहीं घृणा की आँखों से
माटी की महिमा समझो हृदय उदार करो।
माटी से कीमत है माटी की मूरत की
ओ माटी के पुतलो, माटी से प्यार करो।
माटी की महक, समायी है मन–प्राणों में।
माटी की मृदुता, छलक रही, मुस्कानों में।
माटी का स्रोत मचलता है जन जीवन में।
माटी की मस्ती है कजली की तानों में।
माटी उठती है तो तूफान उठाती है।
माटी करवट लेती, धरती थर्राती है।
जो माटी को मुर्दा कहता, वह भूल रहा
माटी तो मुर्दों में नव प्राण जगाती है।
माटी है नित्य नवीन, पुरानी होकर भी।
माटी है सब से दीन कि दानी होकर भी
माटी की परतों में दर्शन के पृष्ठ खुले।
प्राणी पढ़ पाते नहीं कि ज्ञानी होकर भी।
माटी तो सचमुच में सोने की जननी है।
माटी को सोना कहकर मूल्य घटाना मत।
माटी है अक्षय कोष धरा के रत्नों का।
माटी को सोना समझ कहीं सो जाना मत।

– लाखन सिंह भदौरिया 'सौमित्र'
भोजपुरा (निकट दीवानी), मैनपुरी

मेथी बवासीर कृमिरोग का नाश करती है

दोहन–कब्ज कारक–बलकारक हृदय को ताकत देती है। वात कफ़नाशक एवं ज्वर नाशक है। कटु तिक्त रस लघुरश रुक्ष उष्मवीर्य और कटुविपाक है। वायु को शान्त करने वाली पौष्टिक संधिवात–कमर दर्द में लाभदायक। सुश्रुत मेथी की भाजी को रुक्ष एवं मल–मूत्र को रोकने वाली मानते हैं।

वैज्ञानिक मत इसमें तेल, राल और अलव्युमिन होता है। इसमें 25 प्रतिशत फास्फोरिक एसिड होता है।

डॉ. आर.एन शोरी के अनुसार मेथी चिकनी बलकारक और वायु नाशक है। यह संग्रहणी–अग्नि मन्दता–और वात रोगों का नाश करती है।

उपयोग

1. शीतकाल में मेथी का सेवन करने वालों को वायु रोग नहीं होता।
2. मेथी वात रोग में श्रेष्ठ मानी जाती है।
3. मेथी स्त्रियों के लिए बहुत उपयोगी है। दुर्बलता दूर होकर शक्ति आती है।
4. वातरोगियों और कफ़रोगियों को पथ्य में दी जाती है।
5. संधिवात, कमर का दर्द तथा जोड़ों का दर्द में लाभ देती है।
6. शीतकाल में मेथी पाक या लड्डू खाना हितकारी है।
7. मेथी का आटा–दही में मिलाकर खाने से पेचिश मिटती है।
8. मेथी के कोमल पत्तों का साग कब्ज को दूर करता है।
9. मेथी व्रण का दाह सूजन कम करती है।
10. मेथी का चारमाशा चूर्ण लेने से जीर्ण आमातिस्तार मिटता है।

हरिश्चन्द्र आर्य
अमरोहा (उ.प्र.)

****

डी.ए.वी. वेलचेरी (चैन्नई) में विश्व पर्यावरण दिवस

डी.ए.वी. वेलचेरी (चैन्नई) में विशेष कार्यक्रम का आयोजन किया। जो ***'प्लास्टिक प्रदूषण को हराओ'*** विषय पर केंद्रित था।

कार्यक्रम की शुरुआत गायत्री मंत्र के उच्चारण के साथ हुई, इसके बाद डी.ए.वी. गान हुआ। अक्षया लक्ष्मी ने विश्व पर्यावरण दिवस के महत्त्व पर एक व्यावहारिक प्रस्तुति दी। विद्यार्थियों ने विश्व पर्यावरण दिवस के थीम गीत ***'प्लास्टिक प्रदूषण को समाप्त करना'*** पर अपने मनमोहक नृत्य प्रदर्शन से सबका मन मोह लिया। पर्यावरण के प्रति उनकी ऊर्जा, उत्साह और जुनून हर कदम पर चमकता हुआ दिखाई दिया। विद्यार्थियों द्वारा प्रस्तुत 'गैलरी वॉक' के दौरान छात्र–छात्राओं के विचारोत्तेजक प्रदर्शनों और प्रस्तुतियों ने धरती पर पड़ने वाले सकारात्मक प्रभावों पर प्रकाश डाला।

प्राचार्या महोदया ने अपने संबोधन में कहा–यह कार्यक्रम हमारी सामूहिक ज़िम्मेदारी को दर्शाते हुए जो विद्यार्थियों को पर्यावरण के प्रति जागरूक नागरिक बनने के लिए प्रेरित करता है।

कार्यक्रम का समापन राष्ट्रगान के साथ हुआ, जिसके बाद एकता और शांति की भावना को मज़बूत करते हुए शांति पाठ की भावपूर्ण प्रस्तुति हुई।

डी.ए.वी. भड़ोली (नदौन) हिमाचल में समाज कल्याण की गतिविधियाँ

डी.ए.वी. भड़ोली हर दिन की शुरुआत यज्ञ से होती है। प्रधानाचार्य सुरजीत कुमार राणा के अनुसार विद्यालय में विभिन्न गतिविधियों का आयोजन किया गया जिसका मुख्य उदेश्य जन कल्याण, विद्यार्थियों को अपनी परम्परा से जोड़ना, उन्हें सभ्य नागरिक बनाना, और चित्र प्रदर्शनी लगाई गई, फिट इंडिया के तहत साइकिल दौड़ जिसमें प्रधानाचार्य सहित बच्चों व अध्यापकों ने भाग लिया। पर्यावरण दिवस पर जागरुक रैली के साथ लघु नाटिका तथा विद्यार्थियों और अध्यापकों के लिए साप्ताहिक योग शिविर का आयोजन किया गया। प्रधानाचार्य ने कहा इन

ईश्वर और देश भक्ति की भावना को विकसित करना था।

बच्चों में नैतिकता के गुणों को विकसित करने के लिए डी.ए.वी. स्थापना दिवस पर यज्ञ, भाषण गतिविधियों के माध्यम से विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास तो होता ही है साथ में हम राष्ट्र के उत्थान के लिए भावी पीढ़ी का निर्माण करते हैं।

आर्ष कन्या गुरुकुल हज़ारी बाग में अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस मनाया गया

नवाबगंज स्थित आर्यसमाज हजारीबाग द्वारा संचालित आर्ष कन्या गुरुकुल में विश्व योग दिवस मनाया गया। केंद्रीय आयुष मंत्रालय द्वारा जारी प्रोटोकॉल तथा दिशा निर्देश के अनुसार गुरुकुल के निदेशक आचार्य कौटिल्य ने सभी विद्यार्थियों को शारीरिक मानसिक बौद्धिक एवं आत्मिक रूप से स्वस्थ एवं सबल बनने के लिए कई प्रकार के सूक्ष्म योग, आसन एवं प्राणायाम का अभ्यास कराया।

आचार्य कौटिल्य ने इस बार विद्यार्थियों से संकल्प करवाया कि सभी विद्यार्थी अपने–अपने परिवार के सदस्यों को भी योग, आसन एवं प्राणायाम करने के लिए प्रशिक्षण भी देंगे और प्रेरित भी करेंगे। इस अवसर पर एक स्वस्थ परिवार, स्वस्थ समाज एवं स्वस्थ राष्ट्र निर्माण के लिए गुरुकुल की सभी अध्यापिकाओं ने भी यह संकल्प लिया कि 1 वर्ष तक अपने–अपने मोहल्ले वासियों को भी योग का प्रशिक्षण देंगे।

इस विशेष अवसर पर शहर के कर्मठ समाजसेवी और गुरुकुल के संरक्षक जीवन गोप, गुरुकुल की प्राचार्या पुष्पा शास्त्री एवं कर्मठ समाज सेवी बटेश्वर मेहता ने भी पूरी तन्मयता के साथ योगासन और प्राणायाम का अभ्यास किया। बटेश्वर मेहता ने अपने संबोधन में एक संदेश दिया कि करो योग रहो निरोग।

Registration No. R.N.I. 39\57
Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11\6066\2024-25-26
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103\2024-25-26
Posted at L.P.C.(Delhi RMS)D110006 ON Wednesday & Thursday, 2025

के.बी. डी.ए.वी. सै.-7, चण्डीगढ़ में 11वें अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस का उत्साहपूर्वक आयोजन

कैलाश बहल डी.ए.वी. स्कूल चण्डीगढ़ के परिसर में सुबह 6:30 बजे से 7:45 बजे तक 'पृथ्वी के लिए योग, एक स्वास्थ्य' थीम के तहत स्टाफ के लगभग 70 सदस्यों और कक्षा 12 के एनएसएस स्वयंसेवकों ने ***कॉमन योग प्रोटोकॉल*** का प्रदर्शन किया। कुल मिलाकर, लगभग 900 छात्र, 150 अभिभावक और स्टाफ के लगभग 50 सदस्य प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी के साथ लाइव जुड़े, जब उन्होंने विशाखापत्तनम से योग आसन किए। स्कूल ने लाइव प्रदर्शन के लिए विस्तृत व्यवस्था की। बच्चों और उनके

अभिभावकों के साथ लाइव लिंक साझा किए गए, जिन्हें अपने घरों से जुड़ने के लिए भी प्रोत्साहित किया गया।

योग प्रशिक्षक श्री सुमित ने सत्र के दौरान आसनों के महत्व को समझाया, जिसमें हृदय में ओम की गूंज और गायत्री मंत्र के उच्चारण से मन में ध्यान की स्थिति पैदा होती है। समूह ने प्राणायाम, वार्म अप स्ट्रेच, ताड़ासन, भुजंगासन, वज्रासन और शवासन जैसे श्वास संबंधी व्यायाम किए, जिसमें आसन, लचीलापन और विश्राम पर ध्यान केंद्रित किया गया।

सत्र का उद्देश्य स्वस्थ जीवनशैली के लिए एक सतत और समग्र अभ्यास के रूप में योग के बारे में जागरूकता फैलाना था।

योग सत्र का समापन ध्यान, गहन मौन और ध्यान के साथ हुआ। प्रोटोकॉल का समापन छाछ और फलों के सेवन के साथ हुआ।

डी.ए.वी. जवाहर नगर, मंडी (हि.प्र.) पर्यावरण संरक्षण का संकल्प

डी.ए.वी. सेंटेनरी पब्लिक स्कूल, जवाहर नगर मंडी में 'प्लास्टिक प्रदूषण का अंत' विषय पर आयोजित जागरूकता कार्यक्रमों की शृंखला में विद्यालय परिसर रचनात्मकता और प्रेरणा से सराबोर रहा।

कार्यक्रम की शुरुआत एक

प्रभावशाली अंग्रेज़ी नाटक से हुई, जिसके बाद डॉ. रितु ने प्लास्टिक प्रदूषण के दुष्परिणामों पर जानकारी दी। हिंदी शिक्षक श्री सुनील कुमार ने विद्यार्थियों को पर्यावरण सरंक्षण की प्रेरणा दी।

विद्यार्थियों द्वारा प्रस्तुत कविताएं, नुक्कड़ नाटक, नृत्य और मूक अभिनय ने दर्शकों को गहरे संदेश दिए।

विशेष आकर्षण रहा "एक पेड़ मां के नाम" पौधारोपण अभियान, जिसमें प्रधानाचार्य सहित समस्त स्टाफ व छात्रों ने सहभागिता निभाई। एन.सी. सी. एयर विंग कैडेट्स ने बिजनी तक रैली निकालकर पर्यावरणीय चेतना का संदेश दिया। प्रधानाचार्य ने इको क्लब व समन्वयक शिक्षकों की प्रशंसा करते हुए विद्यार्थियों से हरित जीवनशैली अपनाने का आह्वान किया।

नई पीढ़ी के मन में स्वास्थ्य, पर्यावरण और आंतरिक संतुलन के बीज बोने के साथ–साथ विद्यार्थियों में सामाजिक चेतना, रचनात्मक ऊर्जा और राष्ट्रीय जिम्मेदारी के भाव को सशक्त करने का प्रयास किया गया है।

डी.ए.वी. जयपुर में 11वाँ अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस

वैशालीनगर स्थित डी.ए.वी. विद्यालय जयपुर में अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस का 11वाँ संस्करण मनाया गया। जिसका विषय **'एक पृथ्वी, एक स्वास्थ्य'** था।

प्रातः 5:30 बजे विद्यालय प्रांगण में सभी शिक्षकगण, अभिभावकगण, छात्रवृन्द, एनसीसी कैडेट्स, कार्यालयकर्मी व चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी उपस्थित हुए, जिन्हें योग प्रशिक्षकों ने सामूहिक रूप से योगासन, प्राणायाम व ध्यानादि योगक्रियाएँ करवाईं।

प्राचार्य श्री अशोक कुमार शर्मा ने इस अवसर पर विद्यालय परिवार के सभी सदस्यों को अन्तरराष्ट्रीय योग दिवस की शुभकामनाएँ प्रदान कीं। उन्होंने कहा कि हमने एक साथ मिलकर योग करके इस वर्ष की थीम का पालन किया है और सही मायने में अन्तर्राष्ट्रीय योग–दिवस को सार्थक बनाया है।

योग को दैनिक दिनचर्या का अंग बनाने का आह्वान किया। उन्होंने कहा–**'योगः कर्मसु कौशलम्'** गीता का यह प्रेरक संदेश भी योग को परिभाषित करता है और कार्यक्षेत्र पर कौशल अर्जन करने में योग के महत्व पर प्रकाश डालता है।

इसी संदेश के साथ अन्त में, शान्तिपाठ व प्रसाद वितरणपूर्वक कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मंदिर मार्ग के लिए **एस.के शर्मा** द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित **फर्स्ट इम्प्रैशन कार्पोरेट सर्विसिज, (प्रा.) लि.,** ई.113–114, सैक्टर–63, नोएडा, उ.प्र.–201301 (दूरभाष : 120–4246315) से मुद्रित एवं कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन मंदिर मार्ग नई दिल्ली से प्रकाशित मो.–9868894601, 23362110, 23360059 सम्पादक – **पूनम सूरी**